श्रीगोपालविरचितः

श्रीगोपालविवेकः



सम्पादिका

डॉ. अपराजितामिश्रा

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्

(मानितविश्वविद्यालयः)

गङ्गानाथझापरिसरः

प्रयागः

श्रीगोपालविरचितः

श्रीगोपालविवेकः



सम्पादिका

डॉ. अपराजितामिश्रा

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्

(मानितविश्वविद्यालयः)

गङ्गानाथझापरिसरः

प्रयागः

Ganganatha Jha Campus Text Series No. 73

General Editor
Prof. Shail Kumari Mishra

Gopal's

Gopāl-Vivek

Edited by

Aparajita Mishra

Rashtriya Sanskrit Sansthan
Ganganatha Jha Campus
Chandrashekhar Azad Park
Allahabad - 211 002

2013

Published by : Principal
Rashtriya Sanskrit Sansthan
Ganganatha Jha Campus
Chandrashekhar Azad Park
Allahabad - 211 002 (U.P.) India

First Edition : 2013

Price : ₹

Printed At : Academy Press
602, Daraganj, Allahabad

श्रीगोपालविरचित:

श्रीगोपालविवेक:

सम्पादिका

डॉ. अपराजिता मिश्रा

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मा.वि.)

गङ्गानाथझा परिसर

आजादोद्यानम्, इलाहाबाद:

प्रकाशकः प्राचार्यः
राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्
(मानित-विश्वविद्यालयः)
गङ्गानाथझा-परिसरः,
इलाहाबादः -2

संस्करणम् प्रथमम्

प्रकाशनवर्षम् - 2013

मूल्यम् : /- रूप्यकाणि

पृष्ठविन्यासकारः
ब्रह्मानन्दमिश्रः

मुद्रणम्
एकेडमी प्रेस,
६०२ दारागंज, इलाहाबाद

शुभाशंसनम्

भारत धरा वह ज्ञान भूमि है, जहाँ के आप्तकाम एवं निष्काम महामनीषियों ने अपने भगवत्प्रेम समन्वित तत्त्व ज्ञान से सम्पूर्ण संसार का पथ प्रदर्शन किया है। यहाँ चारों पुरुषार्थों में सदा धर्म को, भोग से अधिक योग को तथा साधना और उपासना की दिशा में भगवत्प्रेम को अधिक महत्त्व दिया गया है। शास्त्रों में सुख–शान्ति, रति और विरति इन सबके स्फुरण और जागरण का मूल भगवत्प्रेम ही माना गया है। इसीलिए परम अद्वैती भगवान् शंकराचार्य ने भगवत्प्रेम की सार्थकता का समर्थन करते हुए – "मोक्षकारणसामग्रयां भक्तिरेव गरीयसी" कह कर भगवत्प्रेम की महत्ता एवं गरिमा को विशिष्ट रूप से स्वीकार किया है। तत्त्वनिष्ठा और भगवत्प्रेम के सामञ्जस्य का अद्भुत उदाहरण हमें अद्वैतसिद्धि के रचयिता श्री मधुसूदन सरस्वती जी के पद्यों में देखने को मिलता है –

अद्वैतवीथिपथिकैरुपास्याः स्वाराज्य सिंहासनलब्धदीक्षा
शठेन केनापि वयं हठेन दासीकृता गोपवधूविटेन।

अर्थात् भगवत्प्रेम सोऽहं से दासोऽहं बनने को विवश कर देता है। तभी तो भक्ति एवं प्रेम के परमाचार्य देवर्षि नारद ने प्रेम के स्वरूप के विषय में 'अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्। सा तु कर्मज्ञान योगेभ्योऽयधिकतरा'। 'फलरुपत्वात्'। (ना.भ.सू. ५१, २५, २६) कह कर प्रेमभक्ति को कर्म योग और ज्ञानयोग से श्रेष्ठ सिद्ध किया है और यही पर प्रेमा भक्ति की चरम परिणति को निरूपित करते हुए कहा है "यद् प्राप्य न किञ्चिद् वाञ्छति, न शोचति, न द्वेष्टि, न रमते, नोत्साही भवति।" (ना.भ.सू. ५) स्वयं भगवान् भी भक्ति के अधीनस्थ होकर यही तो चाहते हैं –

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न वै।
मद् भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद। प.पु. ३०, १२।

भारतवर्ष में भक्ति की अजस्र धारा प्राचीन काल से ही प्रवाहित होती रही है। संस्कृत वाङ्मय के साथ ही क्षेत्रीय भाषाओं में भी भरपूर भक्ति साहित्य की रचना हुई है। दक्षिण भारत में ईसा की चौथी शताब्दी से लेकर दशवीं शताब्दी तक आलवार भक्तों के तमिल भक्ति गीतों में भागवत धर्म की विद्यमानता प्राप्त होती है। दक्षिण भारत के कुछ आचार्यों ने आलवारों की उपासना को शास्त्रीय रूप दिया है। उक्त आचार्यों में चतुः सम्प्रदायाचार्य के नाम से प्रसिद्ध श्री रामानुजाचार्य, श्री विष्णुस्वामी, श्री निम्बाकाचार्य तथा श्रीमध्वाचार्य जी का नाम प्राप्त होता है, जिन्होंने जीवजगत् की सत्यता तथा ईश्वर की भक्ति को प्रतिष्ठापित किया। आगे बारहवीं शताब्दी से लेकर उत्तर भारत में भक्ति के अनके पन्थ प्रचलित हुए, जिसमें रामानन्द, गौडीय, राधावल्लभीय तथा हरिदासी आदि सम्प्रदाय प्रमुख हैं। भक्तिमार्ग के प्रतिष्ठापक आचार्यों एवं सम्प्रदायों के अतिरिक्त भी भगवद्भक्तिपरक विशाल साहित्य की रचना भक्त कवियों द्वारा खूब की गई है, जो संस्कृत से इतर क्षेत्रीय भाषाओं में भी प्रचुरता से उपलब्ध है। प्रस्तुत ग्रन्थ 'गोपाल विवेक' भी इसी शृङ्खला की एक कड़ी है। यह ५४ पद्यों का विष्णुभक्तिपरक एक लघुकाव्य है। इसके रचयिता श्रीगोपाल पण्डित हैं। जैसा कि अपने ग्रन्थ की पुष्पिका में उन्होंने लिखा है 'गोपालेन विपश्चिता कृतमिदं वैराग्यहेतोः परम्।' यह रचना पूरी तरह से वैष्णवागम से प्रभावित है। इस पर भागवत तथा तमिल आलवार भक्तिगीतों का भी स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। इस काव्य की एक बड़ी विशेषता यह है कि कवि अपने प्रत्येक श्लोक की पुष्टि में अन्य ग्रन्थों के समानार्थक पद्यों को व्याख्या में उद्धृत करता है। जैसे –

विहाय दारान् सुतभृत्यबान्धवान् प्राप्ता भवन्तं भवबन्धभीताः।
तेषां कृतो नैव प्रियो हि सठः सुखीकथं स्याम करुणानिधेऽहम्।।

इसकी व्याख्या में कवि द्वारा उद्धृत मार्कण्डेय पुराण का यह श्लोक इसी भाव को व्यक्त करता है –

सठः सर्वात्मना त्याज्यो यदि त्यक्तुं न शक्यते।
सद्भिः सहैव कर्तव्यः सत्तः संसारभेषजम्।।

वैराग्य तथा विवेक की चर्चा करते हुए कवि आचार्य शङ्कर के विचारों से भी प्रेरित प्रतीत होता है–

वयसि गते कः काम विकारः क्षीणे वित्ते कः परिवारः।
शुष्के नीरे कः कासारः तत्त्वे ज्ञाते कः संसारः।।

इस प्रकार कवि ने अपनी छोटी सी रचना में योगवासिष्ठ, चैतन्यचन्द्रोदय नारदपाञ्चरात्र, भागवतपुराण, ब्रह्मपुराण, विष्णुपुराण, पद्मपुराण तथा मार्कण्डेयपुराण, भगवद्गीता, महाभारत आदि अनेक ग्रन्थों के समानार्थक श्लोकों का उल्लेख करके अपनी बहुज्ञता एवं वैदुष्य का परिचय दिया है। ग्रन्थ के अन्त में कवि महाकवि कालिदास का अनुकरण करते हुए –

क्वाहं मन्दमतिः सन्तः क्व कृष्णगुणवारिधिः।

विनम्रतापूर्वक अपनी प्रणति निवेदन करता है तथा फलश्रुति के साथ ग्रन्थ को पूर्ण करता है।

यद्यपि पण्डित गोपाल द्वारा विरचित यह ग्रन्थ ५४ श्लोकों का लघुकाव्य है तथापि भगवद्भक्तों के लिए इसके पद्य परम रसायन हैं। कवि का आग्रह भी है – "सुधियः पेपीयतामादरात्"। विदुषी सम्पादिका डॉ. (श्रीमती) अपराजिता मिश्रा ने अत्यन्त श्रमपूर्वक अनेक ग्रन्थों का अध्ययन कर गोपाल विवेक का वैदुष्यपूर्ण सम्पादन किया है। साथ ही पाठकों की सुविधा हेतु हिन्दी अनुवाद से भी समलङ्कृत किया है। इनके इस कार्य द्वारा भक्ति की विशाल परम्परा की एक विशिष्ट कृति विद्वानों के विवेचन तथा अध्ययन का विषय बन सकेगी। एतदर्थ डॉ. अपराजिता मिश्रा सर्वथा साधुवाद की पात्र हैं। मैं ईश्वर से इनके अभ्युदय की कामना करती हूँ।

प्रो. शैलकुमारी मिश्र
प्राचार्य (का.)

पुरोवाक्

मानव-हृदय की अनिवार्य वृत्ति है – रागात्मकता। लौकिक दृष्टि से काम की सर्जना रागात्मकता से होती है। रागात्मक वृत्ति की चरम-परिणति लोक में स्त्रीपुंविषयक शृङ्गार में दिखाई देती है। सम्पूर्ण सांसारिक मनोभावों का अथ और इति शृङ्गार में ही रचा जाता है। परन्तु शृङ्गार विषयक रति अपनी आकुल-व्याकुल प्रगाढ़ता के साथ ही शाश्वत और निरन्तर तृप्तिदायिनी नहीं बन पाती। यही से उस शाश्वत और अनन्त तृप्तिदायक तत्त्व की खोज आरम्भ होती है। इसी अन्वेषण में जब रति को जागतिक, शारीरिक, भौतिक सीमा से ऊपर उठाकर सौन्दर्यसारसर्वस्व परम प्रेमास्पद चिद्घन सत्ता से जोड़ दिया जाता है तब यही रतिभाव महाभाव बनकर मुखरित होता है। यही भक्ति शृङ्गार का महनीय रूप धारण करता है और यह परमानुरागात्मक महाभाव परमतत्त्व को भी आकर्षण-रज्जु में बाँधकर खींच लाता है। वैष्णवों के अनुसार परमात्मा की स्वरूपभूता शक्ति भक्ति का चरमफल भी यही है।

परमसत्ता के प्रति जीवात्मा की सहज रागात्मकता का यह भाव ही अनुराग और उपासना के सम्बन्धानुरोध से विविध स्तरों और रूपों में परिणमित हुआ करता है। इस परिणमन का अनुशीलन ही भक्ति और भक्तिरस के विविध भेदों की गवेषणा का मूल उत्स है।

इस सम्पादन कार्य के मूल में यह दृष्टि है कि वैष्णव भक्ति मार्ग से प्रभावित पश्चाद्वर्ती भक्त कवियों द्वारा जो प्रभूत साहित्य रचा गया उनमें से यह महत्त्वपूर्ण रचना भक्ति-काव्य-रसिकों के लिए उपलब्ध हो सके। भक्ति के स्वरूप, भेद-प्रभेद, विभिन्न सम्प्रदायों एवं दर्शनों की दृष्टि में भक्ति तथा भक्ति की रसरूपता आदि विषयों पर प्रभूत साहित्य उपलब्ध है, परन्तु ग्रन्थ में भक्ति

ही मूल विवेच्य होने से भक्ति से सम्बद्ध उपरोक्त विषयों पर विचार आवश्यक होने से इन विषयों को संक्षिप्त रूप में भूमिका भाग में स्थान दिया गया है।

इस ग्रन्थ के सम्पादन करने में मेरा भी स्वार्थ निहित था। मेरी भी उत्कट इच्छा हुई कि क्लेशघ्नी, शुभदा, मोक्षातिशायिनी रसेश्वर श्रीकृष्णाकर्षिणी भक्ति मन्दाकिनी में अवगाहन करूँ। इसी भाव से भावित चित्त वृत्ति से मैं इस ग्रन्थ सम्पादन के कार्य में तत्पर हुई। अनन्त रसों के उत्स रसेश्वर रसस्वरूप श्रीकृष्ण के पदारविन्द मकरन्द के सीकर की लालसा में किया गया यह कार्य कुछ देने के लिए नहीं प्रत्युत पाने के लिए ही है। साक्षात् मङ्गलस्वरूप भगवान् के स्मरण से इस ग्रन्थ के पाठकों का, भक्तों का हरिचिन्तन होगा। उनकी और प्रेरकों की हरिचिन्तन धारा भी मुझे प्राप्त होगी।

सर्वप्रथम मैं अहैतुकी कृपा करने वाले राधाप्राणस्वरूप परमप्रेमास्पद श्रीकृष्णचन्द्र के सामने श्रद्धावनत हूँ जिनके अनुग्रह ने ही मुझे इस कार्य का निमित्त कारण बनने का सौभाग्य प्रदान किया।

इस सम्पादन कार्य की पूर्णता में अपेक्षित मार्गदर्शन हेतु प्रो. ललितकुमार त्रिपाठी के प्रति श्रद्धायुक्त प्रणामाञ्जलि निवेदित करती हूँ।

ग्रन्थ का साकार रूप में परिणमन मेरी स्नेहमयी करुणामयी, भक्तिमती माता श्रीमती माया पाण्डेय के आशीर्वाद का ही सुमधुर परिपक्व फल है। मैं उनके पावन श्रीचरणों में प्रणामाञ्जलि अर्पित करती हूँ।

मेरे जीवन सहचर श्री अनूपमिश्र जिन्होंने उदार भाव से सदा मुझे जागरित, प्रेरित एवं प्रवृत्त किया उनके प्रति आजीवन हार्दिक कृतज्ञता समर्पित करती हूँ।

मनोयोगपूर्वक ग्रन्थ के प्रकाशन एवं शुभाशंसा प्रदान करने हेतु राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, गङ्गानाथ झा परिसर की प्राचार्य प्रो. शैलकुमारी मिश्र के प्रति विनम्रभाव से कृतज्ञता निवेदित करती हूँ।

भागवत धर्म से आप्यायित मेरे परिवार के सभी अनन्य समाराधक बन्धुजनों को भी मैं भक्तिपुरस्सर यथायोग्य हार्दिक कृतज्ञता स्नेह एवं प्रणाम

समर्पित करती हूँ। ग्रन्थ के टङ्कण कार्य में सहयोग हेतु श्री ब्रह्मानन्द मिश्र एवं आशीष द्विवेदी को धन्यवाद देती हूँ। मानवकृत कार्यों का सर्वथा निर्दोष होना सम्भव नहीं। इसलिए ग्रन्थ की न्यूनताओं हेतु विज्ञजन क्षमा करेंगे और मार्गदर्शन देंगे क्योंकि–

गच्छतः स्खलनं क्वापि, भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति साधवः।।

अपराजिता मिश्रा

●●

भूमिका*

योऽहं ममास्ति यत्किञ्चित् इह लोके परत्र च।
तत्सर्वं भवतो नाथ चरणेषु समर्पितम्।।
पदे पदे यथा भक्तिः पादयोस्तव जायते।
तथा कुरुष्व देवेश नाथस्त्वं नो यतः प्रभो।।

भगवत्प्रेम की भावना अत्यन्त प्राचीन काल से मानव-मन को आप्लावित करती रही है। जिस दिन से मानव-मन ने इस संसार की नियामक शक्ति या शक्तियों से भय करने के स्थान पर प्रेम करना सीखा, उसी दिन उसमें भक्ति भाव का बीजारोपण हुआ जो निरन्तर फलता-फूलता गया। भक्ति के मूल में उसी परमसत्ता के प्रति प्रेम भी हो सकता है और जगत् के किसी व्यक्ति, पदार्थ या क्षेत्र के प्रति भी। परन्तु नश्वर के प्रति प्रेम को भक्ति नहीं कहा जाता है। जो प्रेम अमृत शाश्वत, परम सत्ता के प्रति होता है और अमृतत्व प्रदान करता है, उसे ही भक्ति कहा जाता है। भक्ति एक शाश्वत मनोभाव है और पौराणिक परम्परा में इसे परमात्मा की स्वरूपभूता शक्ति माना गया है। भारतीय वाङ्मय में विविध रूपों में इसका विस्तार हुआ। वैदिक साहित्य में बीज रूप में उपलब्ध भक्ति-तत्त्व को ही मनीषियों ने उपनिषद् काल में विकसित रूप में स्थापित किया है। भक्ति के विकास में उपनिषदों का बहुत ही महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। सभी परवर्ती चिन्तकों ने उपनिषदों से ही अपना कदम बढ़ाया है, फिर रामायण, महाभारत के युग तक आकर भक्ति-परम्परा का बहुत कुछ विकास हो जाता है। इस प्रकार

---

* यह भूमिका भाग 'जर्नल ऑफ द गङ्गानाथ झा कैम्पस' अंक ६८, वर्ष २०१२ में प्रकाशित मेरे शोध लेख का ही परिवर्धित रूप है।

वेद, उपनिषद्, महाकाव्य, भागवत, पाञ्चरात्र, भक्तिसूत्र आदि भक्ति–भावना के विभिन्न सोपान हैं।

भक्ति का स्वरूप–

भक्ति–सम्प्रदायों में भक्ति के स्वरूप के विषय में आंशिक साम्य होते हुए भी मतभेद दिखाई पड़ता है। 'शाण्डिल्यभक्तिसूत्र' तथा 'नारदभक्तिसूत्र' में सर्वप्रथम भक्ति का शास्त्रीय विवेचन उपलब्ध होता है। शाण्डिल्य के मतानुसार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के नायक परमात्मा में परम अनुराग ही भक्ति है अर्थात् भगवान के साथ अनन्य प्रेम हो जाना ही भक्ति है–

'सा परानुरक्तिरीश्वरे'[१]

इनके अनुसार भक्ति ही भगवत् प्राप्ति का सर्वजनसुलभ सर्वोत्तम उपाय है तथा भक्ति पर सभी का निर्विघ्न अधिकार है–

'आनिन्द्ययोन्यधिक्रियते पारम्पर्यात् सामान्यवत्'[२]

स्वल्प भी भक्ति से जन्म–जन्मान्तर कृत पाप अनायास स्वयं ही नष्ट हो जाते हैं। 'नारदीय सूत्र' में शाण्डिल्य के मत का उल्लेख करते हुए कहा गया है– 'स्वात्मरसनुकूल विषये स्नेहाधिक्यमेव भक्तिर्गीयते' – 'आत्मरत्यविरोधेनेति शाण्डिल्यः'[३] इस प्रकार आचार्य शाण्डिल्य के कथनानुसार परमात्मा में सर्वात्मना तैलधारावत् अविच्छिन्न प्रेमपूर्ण निष्काम चित्तवृत्ति ही भक्ति कहलाती है –

'सर्वात्मना निमित्तैव स्नेहधारानुकारिणी।
वृत्तिः प्रेमपरिष्वक्ता भक्तिर्माहात्म्यबोधजा ।।'[४]

---

१. शा.भ.सूत्र– सूत्र–२, स्वप्नेश्वर की टीका, प्रकाशक – एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल – १८६१, सम्पादक– J.R. BALLANTYNE (Collection of Oriental Works, New Series) पृ.–४।

२. शा.भ. सूत्र – सूत्र –७८, पृ.–५६, पूर्व पुस्तक।

३. ना.भ.सू. – सूत्र–१८, भक्ति कौमुदी व्याख्या युक्त, अनुवादक – डॉ. एम. इ. रङ्गाचार्य, प्रका.–रामकृष्णमठ, बेंगलुरु, संस्क. २००३, पृ.–३०।

४. शा. सं., सन्दर्भ ग्रन्थ–'भक्तिरसविमर्शः' पृष्ठ–२९ पर उद्धृत अंश से ग्रहीत।

इस ग्रन्थ के पश्चात् 'नारदभक्तिसूत्र' में भक्ति का विवेचन उपलब्ध होता है। भक्ति का लक्षण करते हुए नारद ने परमेश्वर में परम अनुराग को ही भक्ति माना है–

'सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा।[५]

नारद के मत में भक्ति अमृत–स्वरूपा है तथा भगवान को सब प्रकार से स्वात्म समर्पण और भगवान का तनिक भी विस्मरण होने पर व्याकुलता का अनुभव करना ही भक्ति है–

'तदर्पिताखिलाचारता, तद् विस्मरणे परमाव्याकुलतेति। '[६]

भक्ति के साधन के विषय में नारद का मत है कि विषय संसर्ग का त्याग, अखण्ड भजन, भगवद् गुणश्रवण, कीर्तन तथा प्रधानतः भगवत्कृपा ही भक्ति प्राप्ति के साधन हैं।[७] इनके अनुसार गौणी भक्ति सत्व, रजस् , तमस् भेद से अथवा भक्त के (आर्त, जिज्ञासु तथा अर्थार्थि) भेदों से त्रिविध होती है और प्रेमा भक्ति एक होते हुए भी ग्यारह प्रकार की होती है।[८] यह परमप्रेमस्वरूपा अनिर्वचनीय तथा मूक को सितास्वाद की भाँति वर्णनातीत होती है। यह प्रेमाभक्ति कतिपय विरल साधकों को ही प्राप्त होती है। नारद ने प्रेमाभक्ति को कर्म, ज्ञान और योग से भी बढ़कर बताते हुए कहा है–

'सा तु कर्मज्ञानयोगेभ्योऽप्यधिकतरा'।।[९]

वस्तुतः नारद तथा शाण्डिल्य के भक्ति के स्वरूप में विशेष भेद नहीं है। क्योंकि दोनों के ही मत में भगवान में परमानुराग ही भक्ति है।

भक्तिमार्ग में पाञ्चरात्र आदि आगम साहित्य का विशिष्ट स्थान है। वैष्णव

---

५. ना.भ.सू. – पूर्वग्रन्थ, सूत्र–२, पृ. – ३।

६. ना.भ.सू. – पूर्वग्रन्थ, सूत्र–१९, पृ.– ३२।

७. ना.भ.सू. – पूर्वग्रन्थ, सूत्र–३५–३८, पृ.– ४८–५४।

८. ना.भ.सू. – पूर्वग्रन्थ, सूत्र–५६–८२, पृ.– ८०–१२५।

९. ना.भ.सू. – पूर्वग्रन्थ, सूत्र–२५, पृ.– ३८।

आगम ग्रन्थ 'नारदपाञ्चरात्र में सर्वविधकामनारहित तथा सर्वथा भगवत्परायण भावयुक्त चित्त से भगवत् सेवा को ही भक्ति माना गया है–

सर्वोपाधि विनिर्मुक्तं तत्परत्त्वेन निर्मलम्।
हृषीकेण हृषीकेशसेवनं भक्तिरुच्यते।।[१०]

यह भक्ति ज्ञानादि से श्रेष्ठ है क्यों कि मुक्ति तो ज्ञान से अनायास ही प्राप्त की जा सकती है। यज्ञादि से स्वर्गादि भोग भी सुलभता से प्राप्य हैं, परन्तु भक्ति की प्राप्ति तो सहस्राधिक साधनों से भी भगवत् अनुग्रह के बिना दुर्लभ है –

ज्ञानतः सुलभा मुक्तिः स्वर्गोर्यज्ञादिपुण्यतः।
सेयं साधनसहस्रैर्हरिभक्तिः सुदुर्लभा।।[११]

श्री सम्प्रदाय के विशिष्टाद्वैत मतानुसार भक्ति को प्रपत्ति माना गया है तथा इससे ही मुक्ति प्राप्ति सम्भव है, ऐसा इस सम्प्रदाय का मत है। प्रपत्ति को षड्विध माना गया है। प्रपत्ति या शरणागति ही यहाँ भक्ति का पर्याय माना गया है। 'अहिर्बुध्न्य संहिता' में शरणागति का स्वरूप निम्नवत् है–

अहमस्म्यपराधानामालयोऽकिंचनोऽगतिः
त्वमेवोपायभूतो मे भवेति प्रार्थनामतिः।
शरणागतिरित्युक्ता सा देवेऽस्मिन्प्रयुज्यताम् ।।[१२]

जीवात्मा द्वारा 'मैं माया के पराधीन अशरण, गतिहीन हूँ। तुम ही एकमात्र रक्षक तथा उपायभूत हो।' इस भावना से भावित हो अपने इष्ट के प्रति सम्पूर्ण समर्पण ही विशिष्टाद्वैत मत में प्रपत्ति है[१३] और यह प्रपन्न भाव ही मोक्ष का उपाय है।

---

१०. ना.पा.– कल्याण, भक्ति अङ्क में नारदपाञ्चरात्र से उद्धत, पृ. २०२ ।

११. ना.पा.– 'भक्तिरसाविमर्शः' ग्रन्थ से उद्धृत, लेखक– कपिलदेव ब्रह्मचारी, पृ. ३१।

१२. अहि.सं.– सम्पादक– एम.डी. रामानुजाचार्य, वॉल्युम २, अड्यार लाइब्रेरी, संस्करण १९१६, मद्रास पृ. ३७०।

श्री शङ्कराचार्य केवलाद्वैती विशुद्धज्ञानमार्गी थे। उनके मत में केवल ब्रह्म ही सत्य है अन्य सब मिथ्या है। परमार्थतः दृश्यमान सभी वस्तु ब्रह्म ही है, उससे भिन्न कुछ भी अन्य जगत में नहीं है। उस ब्रह्म की प्राप्ति केवल ज्ञान से ही होती है। ज्ञानमार्गी होने पर भी व्यावहारिक जगत में उन्होंने भी आदर से भक्ति की प्रतिष्ठा की और उसे स्वीकार किया। उनके मत में मोक्ष के कारणरूप साधनों में भक्ति ही प्रधान साधन है –

मोक्षकारणसामग्रयां भक्तिरेव गरीयसी।।[१४]

शङ्कराचार्य के अनुसार अपने वास्तविक स्वरूप का अनुसन्धान करना ही भक्ति है तथा अपने आत्मतत्त्व का अन्वेषण और अनुचिन्तन ही भक्ति है –

स्वस्वरूपानुन्धानं भक्तिरिप्यभिधीयते।।३२।।
स्वात्मतत्वानुसन्धानं भक्तिरित्यपरे जगुः।। ३३ ।।[१५]

शङ्कराचार्य ने ही अपनी 'शिवानन्दलहरी' में भक्ति को इस प्रकार परिभाषित किया है–

अङ्कोलं निजबीजसंततिरयस्कान्तोपलं सूचिका
साध्वी नैजविभुं लताक्षिरुहं सिन्धुः सरिद्वल्लभम्।
प्राप्नोतीह यथा तथा पशुपतेः पादारविन्दद्वयम्
चेतो वृत्तिरुपेत्य तिष्ठति सदा सा भक्तिरित्युच्यते।।

---

१३. अहि. सं., पूर्व ग्रन्थ, षड् विध प्रपत्ति, पृ. ३७०
षोढा हि वेदविदुषो वदन्त्येनं महामुने
आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम् ।।२७।।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा
आत्मनिक्षेप कार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः।।२८।।

१४. विवकेचूड़ामणि, अनुवादक मुनिलाल, प्रथम संस्करण-सं.-१९८८, पृ.- १०।

१५. वि.चू. पूर्ववत्।

इसी प्रकार उन्होंने अपने श्रीमद्भगवद्गीताभाष्य में भी प्रतिपादित किया है–

'यदविच्छिन्नतैलधारावच्चित्रवृत्तिप्रवाहेणोपास्याकाराकारितवृत्तिरेवो-पासनमिति (भक्तिरिति)[१६]।

इस प्रकार ज्ञात होता है कि केवलाद्वैत के समर्थक शङ्कराचार्य के मत में भी भक्ति का महत्व है ही। उपरोक्त उदाहरणों से यह भी स्पष्ट है कि उनके मत में भी भक्ति के बिना कुछ भी सिद्ध नहीं किया जा सकता है।

विशिष्टाद्वैत मत के प्रवर्तक श्रीरामानुजाचार्य के द्वारा विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के अनुसार ज्ञानकर्म द्वारा विहित उपासना ही भक्ति है, ऐसा उन्होंने अपने गीताभाष्य में स्वीकारा है।[१७] यहाँ इन्होंने प्रतिपादित किया है कि परमप्रीतिपूर्वक तैलधारावत् अविच्छिन्नवृत्ति से अपने इष्ट का चिन्तन ही भक्ति है–

स्नेहपूर्वमनुध्यानं भक्तिरित्युच्यते बुधैः।[१८]

'ब्रह्मसूत्र' के स्वकृत भाष्य में भी उन्होंने निरूपित किया है कि परमनिश्चय के साथ स्व इष्ट का अहर्निश अनुचिन्तन ही भक्ति है, उसी का पर्याय उपासना कहलाता है।[१९] इस प्रकार से विशिष्टाद्वैत मत में उपासना आदि शब्द से वाच्य ज्ञान विशेष ही भक्ति है, उससे ही मुक्ति प्राप्य है। इस सम्प्रदाय के मत में परमानुरागात्मिका बुद्धि ही भक्ति है तथा वही मोक्ष का साधन है। इसे ही शास्त्रों में ज्ञान, ध्यानादि शब्द से प्रतिपादित किया गया है।

श्री भाष्य में रामानुज ने ध्रुवास्मृति को मोक्ष का उपाय माना है। यह ध्रुवा स्मृति क्या है? रामानुज के अनुसार तैलधारा की तरह अखण्ड प्रवाहमयी स्मृति

---

१६. श्रीमद्भगवद्गीता का शाङ्करभाष्य /१२/३

१७. श्रीमद्भगतद्गीता भाष्य रामानुजकृत – ७ अध्याय की अवतरणिका।

१८. पूर्ववत्।

१९. ब्रह्मसूत्र – श्री भाष्य – १/१/१

परम्परा ही ध्रुवास्मृति है।[२०] ध्रुवास्मृति को ही इन्होंने भक्ति कहा है तथा भक्ति शब्द को उपासना का पर्याय माना है।[२१]

विशिष्टाद्वैती श्री रामानन्दाचार्य ने भी अनन्यभाव से परमात्मा में तैलधारावदविच्छिन्न अनुरक्ति को ही भक्ति कहा है। वह भक्ति सभी उपाधियों से विनिर्मुक्त है, उसकी विवेकादि सप्त भूमियाँ, यमादि अष्ट अवयव होते हैं, वही मुक्ति प्रदायिनी है, ऐसा इनके द्वारा स्वीकारा गया है –

'सर्वोपाधिर्विनिर्मुक्तमनेकभेदकं भक्तिः समुक्ता परमात्मसेवनम् ।
अनन्यभावेन नियम्यमानसं महर्षिमुख्यैर्भगवत्परत्वतः।।
सा तैलधारावदनष्टसंस्मृति प्रतानरूपेशपरानुरक्तिका।
भक्तिविवेकादि सप्तभूमिजा यमादिकाष्टावयवा मता बुधैः।।[२२]

अपने गीताभाष्य में भी श्रीवल्लभाचार्य ने कहा है, ज्ञान के बिना भक्ति तथा भक्ति के बिना परमात्मा प्राप्त नहीं होता। इस प्रकार निश्चित है कि उनके मत में भी ज्ञानपूर्विका भक्ति ही भगवत् प्राप्ति का साधन है–

'बिना ज्ञानं कुतो भक्तिः कुतो भक्तिं बिना च तत्'।[२३]

श्रीमद्वल्लभाचार्य के द्वारा उपदिष्ट पुष्टिमार्ग प्रेममार्ग है। आचार्य द्वारा स्वीकृत भक्ति में स्नेह और माहात्म्य दोनों का सम्मिलन होता है – 'स्नेहो

---

२०. रामानुज, ब्रह्मसूत्र– श्री भाष्य, मुनिलाल, प्रकाशन अधिकारी श्री निम्बार्क पीठ, प्रयाग, प्र० संस्करण– सं. २०३०, पृ. – १७।

ध्यानं च तैलधारावदविच्छिन्नस्मृतिसंतानरूपम्।

''ध्रुवा स्मृतिः,'स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः''।।

इति ध्रुवायाः स्मृतेरपवर्गोपायत्वश्रवणात् ।

२१. एवं रूपा ध्रुवानुस्मृतिरेव भक्तिशब्देनाभिधीयते। उपासनपर्यायत्वाद् भक्तिशब्दस्य। पृ.– १९, पूर्व ग्रन्थ।

२२. वैष्णव मताब्जभास्करे – पृ. ६५, भक्तिरसविमर्शः ग्रन्थ पृष्ठ – ३३से उद्धृत।

२३. श्रीमद्वल्लभाचार्य कृत गीता भाष्य।

माहात्म्यं च मिलितं भक्तिर्भवति' (सुबोधिनी)। वास्तव में भक्ति का वास्तविक स्वरूप है प्रेमपूर्वक भगवत्सेवा–

'भक्तिश्च प्रेमपूर्विका सेवा।'[२४]

इन्होंने भी भक्ति को भगवद् अनुग्रह द्वारा ही लभ्य माना है–

'पुष्टिमार्गोऽनुग्रहैकसाध्यः प्रमाणमार्गाद् विलक्षणः।।'[२५]

श्री निम्बार्काचार्य ने दैन्यादि गुण समूह से युक्त प्रेमाभक्ति को मोक्ष साधन स्वरूप माना है। उनके मत में भक्ति के दो भेद हैं – साधन भक्ति तथा साध्य भक्ति। साध्य भक्ति को इन्होंने उत्तमा भक्ति माना है। यही मोक्ष साधिका है–

'कृपास्य दैन्यादियुजि प्रजायते, यया भवेत् प्रेमविशेषलक्षणा।
भक्तिर्ह्यनन्याधियते महात्मनः, सा चोत्तमासाधनरूपिका परा।।[२६]

निघण्टुकार ने भगवत्सेवा को ही भक्ति कहा है– "सेवा भक्ति रूपास्ति, उपासनादि शब्दानां चैकार्थवृत्तित्वं न तु घटकुम्भयोरिव पर्यायत्वम्।"[२७]

श्री चैतन्य के मत में भक्त जन्म–जन्मान्तर में भी सुत, सुन्दरी, धन, जन आदि को छोड़कर भगवान की निर्हैतुकी भक्ति को ही सदा चाहते हैं, अन्य किसी वस्तु को नहीं चाहते–

"न धनं न जनं न सुन्दरी कवितां वा जगदीश कामये
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद् भक्तिरहैतुकीं त्वयि।।"[२८]

श्रीरूपगोस्वामी के मत में ज्ञान कर्म आदि से अविच्छिन्न, सम्पूर्ण कामना शून्य, अनन्यभाव से परमप्रीतिपूर्वक भगवान का निरन्तन चिन्तन ही सर्वोत्तमा

---

२४. कल्याण – भगवत्प्रेम अङ्क, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ. ६१।

२५. ब्रह्मसूत्र अणुभाष्य – ४ / ४ / ९।

२६. वेदान्त कामधेनु, 'भक्ति रस विमर्शः' ग्रन्थ पृ.–३४ से उद्धृत।

२७. निघण्टु, पूर्वग्रन्थ, पृ.–३४ से उद्धृत।

२८. चैतन्यशिक्षाष्टक, पूर्वग्रन्थ पृ.–३४ से उद्धृत।

भक्ति है।[२९] भक्त उसके समक्ष चारों पुरुषार्थों को भी तृण के समान मानते हैं। परमात्मा को भी उसी भक्ति से प्राप्त करते हैं।[३०]

मुक्ति भी साधकों के लिए पिशाचिनी के समान ही है। जब तक मुक्ति की कामना मन में रहती है तब तक भक्ति साधकों के चित्त में तीन दिन भी नहीं हो सकती।[३१]

इसलिए यहाँ मुक्ति की निन्दा की गई है। श्रीरूपगोस्वामी ने ही सर्वप्रथम 'भक्तिरसामृतसिन्धु' में सावयव भक्तिरस का निरूपण किया है। भक्तिरस के प्रचार एवं सैद्धान्तिक निरूपण में वृन्दावन वासी गोस्वामी अभिधान युक्त सन्तों का महान श्रम है।

वोपदेव (१३ वीं शताब्दी) के मतानुसार उपायपूर्वक लिंग निर्देश के बिना ही परमात्मा में मन का स्थिरीकरण ही भक्ति है।[३२] इन्होंने भक्ति को १८ प्रकार का कहा है।[३३] श्रीमधुसूदन सरस्वती के मत में – "भज्यते सेव्यते भगवदाकारमन्तःकरणं क्रियतेऽनयेति करणव्युत्पत्त्या भक्तिशब्देन श्रवणकीर्त्तनादिसाधनमभिधीयते, भजनमन्तःकरणस्य भगवदाकारताविधानं भक्तिरिति भावव्युत्पत्त्या च भक्तिशब्देन फलमभिधीयते"[३४]। ये भक्ति को ही साधनरूपा और साध्यरूपा दोनों ही मानते हैं। भक्ति का स्वरूप प्रतिपादित करते हुए वह कहते हैं कि श्रवणादि नवविध भक्ति से द्रवीभूत चित्त की सम्पूर्ण वृत्तियाँ

---

२९. भक्तिरसामृतसिन्धु – पूर्व विभाग, सामान्य भक्ति लहरी, १/११, प्रकाशक – श्री श्यामलाल हकीम, ब्रज गौरव प्रकाशन, वृन्दावन, संस्करण–१९८१, पृ. १३।

३०. भक्तिरसामृतसिन्धु, पूर्वग्रन्थ, १/१९ पृ. ३३।

३१. भक्तिरसामृतसिन्धु, पूर्वग्रन्थ, द्वितीय लहरी, श्लोक १४, पृ. ६०।

'भुक्तिमुक्तिस्पृहा यावत् पिशाची हृदि वर्त्तते।
तावद्भक्तिसुखस्यात्र कथमभ्युदयो भवेत्।।'

३२. मुक्ताफल – पृ. ८३।

३३. मुक्ताफल – पञ्चम अध्याय।

३४. भक्ति रसायन टीका – पृ. ८।

समूहालम्बनात्मकतया धारावाहिक रूप में परमात्मा में जब स्थित होती हैं तब वह भक्ति रूप में जानी जाती हैं –

द्रुतस्य भगवद्धर्माद् धारावाहिकतां गता।
सर्वेशे मनसो वृत्तिर्भक्तिरित्यभिधीयते।।[३५]

अथवा भगवदाकाराकारिता से भगवद् धर्म से द्रवीभूत निर्विकल्पक चित्तवृत्ति ही भक्ति है।[३६]

उनके मत में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष आदि सुख के साधक होने से पुरुषार्थ है किन्तु भक्ति स्वयं ही सुख स्वरूपा है। अतः पुरुषार्थ चतुष्टय की अपेक्षा वही सर्वोत्कृष्ट सुख एवं परमपुरूषार्थ है। समाधि सुख की भाँति ही भक्ति सुख भी स्वतन्त्र पुरुषार्थ है। परमानन्दरूप होने के कारण भक्तियोग परम पुरुषार्थ ही है।[३७]

अनन्तब्रह्मानन्द भी भक्तिसुख के स्वल्पांश की भी समता नहीं रखता है, यह मधुसूदनसरस्वती का मत है। विष्णुपुराण के टीकाकार श्री नारायणतीर्थ के मत में भगवत् प्रीति के अनुकूल व्यापार ही भक्ति है, तथा पराकाष्ठा को प्राप्त प्रीति ही भक्ति कहलाती है –

"प्रीतिभक्त्योरभेद एव गम्यते,
प्रीतिरेव रतिः पराकाष्ठां गता प्रेमेत्युच्यते।"[३८]

उनके मत में प्रीति और भक्ति में अभेद है। 'भक्ति–मीमांसा–सूत्र' के अनुसार मन का विशिष्ट आनन्द ही भक्ति है –

भक्तिर्मनस उल्लास विशेषः।[३९]

---

३५. भक्ति रसायन – १ / ३।

३६. भक्ति रसायन की दामोदर शास्त्रिकृत 'भक्ति रसस्रोतस्विनी' टीका – पृ. १९।

३७. भक्ति रसायन टीका – पृ. ६।

३८. विष्णु पुराण की नारायण तीर्थकृत टीका।

३९. भक्तिः मीमांसा सूत्र – १ / १ / २।

पतञ्जलि मुनि ने ईश्वरप्रणिधान[४०] को ही भक्ति का पर्याय माना है। उनके मत में ईश्वरप्रणिधान से अथवा भक्ति से परमेश्वर की प्राप्ति होती है।

''ईश्वरप्रणिधानाद् वा''[४१]

इस प्रकार विविध सम्प्रदायों द्वारा निरूपित भक्ति का स्वरूप संक्षेप में उपस्थित किया गया। वस्तुतः भक्ति प्राकृतिक अनुभूति मात्र नहीं है। यह एक तेजस्विनी चिन्मयी शक्ति है। इस शक्ति के प्रभाव से भगवान् वशीभूत होते हैं। यह शक्ति ही विश्व की परम सत्य शक्ति है। भक्तियोग साधक के लिए परमेश्वर प्राप्ति का सहज एवं स्वाभाविक पथ है। भक्तियोग का लक्ष्य परमपुरुष में अपने आपको आसक्त कर उसी में अपनी सत्ता को सर्वतोभावेन लीन करना है। अतः भक्तियोग प्रेम के उच्चतम विकास का विज्ञान-स्वरूप है।[४२]

भक्ति के भेद-

शास्त्रों में तथा विद्वानों एवं साधकों द्वारा उपास्य भेद से, उपासक भेद से, सम्प्रदाय भेद से भक्ति के अनेक भेद किए गए हैं। इस विषय में मतभेद है। सर्वप्रथम श्रीमद्भगवद्गीता में मुख्या तथा गौणी दो भेद भक्ति के किए गए हैं। पुनः गौणी भेद में आर्त्त भक्त की आर्त्ति भक्ति, जिज्ञासु-भक्त की जिज्ञासु भक्ति तथा अर्थार्थि-भक्त की अर्थार्थि-भक्ति आती है। मुख्या भक्ति में ज्ञानी भक्त की ज्ञानभक्ति की गणना होती है। ज्ञानभक्ति को ही अहैतुकी भक्ति या मुख्या भक्ति भी कहते हैं।[४३]

---

४०. भोजराज-'प्रणिधानं भक्तिविशेषो, विशिष्टमुपासनं, सर्वक्रियाणां तत्रार्पणं, विषयसुखादिकं फलमनिच्छन् सर्वाः क्रियास्तस्मिन्परमगुरावर्पयति तत्प्रणिधानम्।' 'राजमार्तण्ड वृत्ति' पृ. १३, पातञ्जलयोगदर्शनम् – सम्पा. – सुरेश चन्द्र श्री., प्रका.- चौखम्बा संस्कृतप्रतिष्ठान, दिल्ली, संस्क. – १९८८, पृ. ७९।

४१. पातञ्जलयोगदर्शन – १ / २३।

४२. श्रीमद्भागवत पुराण में भक्ति रस का निरूपण, कृष्णकान्त जोशी, प्रतिभा प्रकाशन दिल्ली, २००५, पृ. ४७।

४३. श्रीमद्भगवद्गीता – ७.१६।

गीता में गौणी भक्ति भी सात्विक, राजस और तामस भेद से तीन प्रकार की प्रतिपादित की गई है। दैवी मीमांसादर्शन में रसपाद में भक्ति के वैधी तथा रागानुगा दो भेद किए गए हैं। इनमें शास्त्रविधान के द्वारा सम्पादित भक्ति वैधी भक्ति तथा उससे भिन्न शान्तिप्रदायिनी भक्ति रागानुगाभक्ति कहलाती है।[४४]

भक्तिशास्त्र के प्रवर्तक शाण्डिल्य[४५] तथा नारद[४६] के मत में गौणी भक्ति तथा मुख्या भक्ति के भेद से भक्ति दो प्रकार की है। नारद द्वारा भक्ति को सामान्यतः ११ प्रकार की कहा गया है।[४७] श्रीमद्भागवतमहापुराण[४८] में प्रह्लाद ने भक्ति को नव प्रकार का कहा है। श्रीमद्भागवत में सगुणा और निर्गुणा भेद से भक्ति के दो विभाग किये गए हैं।[४९] सगुणा भक्ति तामस, राजस और सात्त्विक भेद से तीन प्रकार की होती है। इन तीनों प्रकार की भक्ति गौणी भक्ति कहलाती है, क्योंकि ये तीनों ही भेद ज्ञान द्वारा प्रभावित तथा स्वभावज प्रवृत्ति द्वारा अनुप्राणित हैं। सात्त्विकी भक्ति उत्तमा होने पर भी सर्वोत्तमा नहीं होती। इसमें भी मोक्षादि की इच्छा और भेद दर्शन रह सकता है। परन्तु जब यह भी समाप्त हो जाते हैं तथा भगवान् ही एकमात्र काम्य हो जाते हैं तब यह निर्गुणा या 'अहैतुकी भक्ति' कहलाती है। यही श्रेष्ठ पराभक्ति तथा मुख्या भक्ति कहलाती है।[५०] यही प्रेमा भक्ति है। 'अध्यात्म रामायण' में भी भक्ति के नव भेद किए गए हैं। तुलसीदास ने भी मानस में नव प्रकार ही भक्ति के माने हैं। इसी प्रकार भक्ति के इन नव भेदों के आधार पर ही भक्ति शास्त्र में साधकों (भक्तों) के भी नव भेद किए गए हैं।

---

४४. दैवी मीमांसा दर्शन – रसपाद, ११–१२।

४५. शाण्डिल्य भक्ति सूत्र – ७२, पृ. ४९।

४६. नारदभक्तिसूत्र – ५४ – ६९।

४७. नारदभक्तिसूत्र – ८२।

४८. श्रीमद्भागवतमहापुराण – ७ / ५ / २३।

४९. श्रीमद्भागवद्गीता – ३ / १६।

५०. श्रीमद्भागवतपुराण में भक्तिरस का निरूपण , प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, लेखक – कृष्णकान्त जोशी, प्रथम संस्करण – २००५, पृ. १८२।

वोपदेव ने 'मुक्ताफल' में विहिता और अविहिता दो भेद भक्ति के किए हैं। शास्त्र मर्यादा के बिना भी स्नेह के द्वारा भगवान् में भक्ति अविहिता या रागानुगा भक्ति कहलाती है। भगवान् में रागात्मिका भक्ति ब्रजवासियों में अभिव्यक्त हुई।

नारायणभट्ट के मतानुसार यही भक्ति कामरूपा और सम्बन्ध रूपा दो प्रकार की होती है। इनमें गोपियों की भक्ति कामरूपा तथा नन्दादि में सम्बन्धरूपा भक्ति प्रतिफलित हुई है। वोपदेव ने भागवत का[५१] अनुसरण कर अपने 'मुक्ताफल' ग्रन्थ में भक्ति के चार भेद – कामजा, द्वेषजा, भयजा और स्नेहजा किये हैं। वेद-प्रतिपादित शास्त्र मर्यादापूर्वक भगवान् में मन का अभिनिवेश करना विहिता भक्ति कहलाती है। श्रवणकीर्तनादि रूप नवधा भक्ति ही सगुण भक्ति कहलाती है। यह मिश्रा एवं शुद्धा भेद से दो प्रकार की होती है। 'मिश्रा भक्ति पुनः, कर्ममिश्रा, कर्मज्ञानमिश्रा, ज्ञानमिश्रा तीन प्रकार की होती है, तथा कर्म मिश्रा भक्ति सात्त्विकी, राजसी, तामसी त्रिविधा होती है। इनमें सात्त्विकी भक्ति कर्मक्षयार्था, विष्णु प्रीत्यर्था, विधिसिद्ध्यर्था तीन भेद वाली होती है।[५२] भक्तिमीमांसा सूत्र[५३] में भी सात्त्विक भक्ति को त्रिविध बताया गया है। भगवदाज्ञा परिपालन तथा भगवत्प्रीति मात्रफल वाली सात्त्विकी भक्ति दास्य-भक्ति में अन्तर्भूत होती है। राजसी भक्ति विषयार्था, यशोऽर्था, ऐश्वर्यार्था तीन प्रकार की है।[५४] तामसी भक्ति हिंसार्था, दम्भार्था, मात्सर्यार्था भेद से तीन प्रकार की है।

अभिसन्धाय यो हिंसा दम्भं मात्सर्यमेव वा।
संरम्भी भिन्नदृग्भावं मयि कुर्यात् स तामसः।।[५५]

कर्मज्ञान मिश्रित-भक्ति भी उत्तमा, मध्यमा, प्राकृता भेद से तीन प्रकार की

---

५१. भागवतपुराण – ७ / १ / ३०।

५२. श्रीमद्भागवतपुराण - ३ / २९ / १०।

५३. भक्तिमीमांसा सूत्र – १२ / २२।

५४. श्रीमद्भागवत – ३ / २९ / ९।

५५. श्रीमद्भागवत – ३ / २९ / ८।

है। सर्वभूतों में भगवद्भाव ही उत्तमा भक्ति है।

सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः।।[५६]

भागवत में[५७] प्राकृता और मध्यमा भक्ति का उल्लेख है। भागवत में कहा गया है कि समुद्र की ओर अभिमुख गंगा प्रवाह के समान अखण्ड रूप में भगवद्गुण श्रवण मात्र के द्वारा भगवान की ओर उन्मुख चित्त का प्रवाह स्वरूप ज्ञान मिश्रा भक्ति ही निर्गुण भक्ति कहलाती है।[५८] इस प्रकार कर्ममिश्रा गृहस्थों के लिए, कर्मज्ञानमिश्रा वानप्रस्थों तथा ज्ञानमिश्रा भिक्षुओं के लिए विहित है। यह सब वोपदेव द्वारा मुक्ताफल में सविस्तार वर्णित है।

वस्तुतः भक्ति शास्त्र के आचार्यों ने भक्ति के सामान्यः दो भेद माने हैं– गौणी या अपरा तथा परा। यह गौणी भक्ति पुनः वैधी और रागात्मिका के भेद से दो प्रकार की होती है। भक्ति के इन सभी भेदों प्रभेदो में प्रेमा भक्ति को मोक्ष से भी बढ़कर तथा रसरूपा कहा गया है। श्रुतियों में परमसत्ता को रसरूप कहा गया है– **रसो वै सः**[५९]

भगवद् विषयिणी रति (भगवत्परक प्रेम) पूर्णतः रसरूप होने के कारण तुच्छ कान्तादि विषयक रति से उसी प्रकार बलवत्तरा है, जिस प्रकार खद्योतजनित प्रकाश से आदित्यप्रभा।[६०] विषय (भक्ति) और आश्रय (भगवान्) दोनों अथवा इनमें कोई एक भी रसात्मक हो तो रति (प्रेम) भी विशुद्ध रसरूपा होती है।[६१] इसीलिए प्रेमाभक्ति को रसरूपा कहा गया है। नारद ने अपने भक्तिसूत्रों में भक्ति

---

५६. श्रीमद्भागवत – १ / २ / ४५।

५७. श्रीमद्भागवत – ११ / २ / ४७।

५८. श्रीमद्भागवत – ३ / २९ / ११।

५९. तै० उ० – २ / ७ / २।

६०. परिपूर्णरसा क्षुद्ररसेभ्यो भगवद्रतिः। खद्योतेभ्य इवादित्यप्रभेव बलवत्तरा।। (भक्तिरसायन २/७६)।

६१. कल्याण, गीताप्रेस, – भगवत्प्रेम अङ्क, पृष्ठ २७६।

को ईश्वर के प्रति परम प्रेमरूपा प्रतिपादित करते हुए प्रेम और भक्ति में अभेद प्रदर्शन किया है।[६२] इस प्रेमा भक्ति को ही नारद ने अमृतस्वरूपा[६३] कहा है। वस्तुतः प्रेमा भक्ति कि महिमा अपूर्व है। इसीलिए उसे सर्वाधिक समादृत किया गया है। प्रेमरूपा भक्ति तो कर्म, ज्ञान और योग से श्रेष्ठतर एवं फलरूपा है।[६४] श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदनरूप नवधा भक्ति इस प्रेमा भक्ति को प्राप्त करने का साधन होती है। यह रागात्मिका भक्ति ही पुष्ट होकर प्रेमा भक्ति का रूप धारण करती है। यही गौणी भक्ति नवधा भक्ति[६५] का बीज है। भगवान की महिमा, करुणा, भक्तवत्सलता आदि गुणों के निरन्तर स्मरण से साधक के हृदय में भक्ति की प्रथम अवस्था की उत्पत्ति होती है यही गौणी भक्ति है। उपासना तथा योग और निरन्तर अभ्यास से गौणी भक्ति का विकास होता है। नवधा भक्ति साधन रूपा भक्ति है जिससे साध्य रूपा प्रेमा या परा भक्ति प्राप्त की जा सकती है। देवर्षि नारद ने ग्यारह प्रकार की प्रेमरूपा भक्ति (आसक्तियों) का उल्लेख किया है–

१. गुणमाहात्म्यासक्ति २. रूपासक्ति ३. पूजासक्ति ४. स्मरणासक्ति ५. दास्यासक्ति ६. सख्यासक्ति ७. कान्तासक्ति ८. वात्सल्यासक्ति ९. आत्मनिवेदनासक्ति १०. तन्मयासक्ति ११. परमविरहासक्ति।

इसका तात्पर्य यह है कि परमात्मा में ग्यारह प्रकार से मन की आसक्ति सम्भव है। पराभक्ति को प्राप्त भक्त में उपरोक्त सभी आसक्तियाँ रहती हैं तथा अन्य सभी भक्तों में कोई न कोई आसक्ति अवश्य रहती है। इस प्रकार यद्यपि

---

६२. सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा ।। (ना. भ. सू. २)।

६३. अमृतस्वरूपा च ।। (ना. भ. सू. ३)।

६४. सा तु कर्मज्ञानयोगेभ्योऽत्यधिकतरा ।।
फलरूपत्वात् ।। (ना. भ. सू. २५-२६)।

६५. श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ।।
इति पुंसर्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा।। श्रीमद्भागवत - ७.५.२३-२४।

भक्ति के स्वरूप के विषय में आचार्यों में अधिक वैमत्य नहीं है परन्तु भक्ति के वर्गीकरण के विषय में विद्वानों के अनेक मत हैं।

भक्ति की रस-रूप में प्रतिष्ठा -

भक्तिरस की स्थापना का श्रेय वस्तुतः काव्यशास्त्र की अपेक्षा भक्तिशास्त्र को अधिक है। धर्मप्राण भारतवर्ष में मधुर भावापन्न भक्तिरस की स्वीकृति सर्वथा स्वाभाविक ही है। भक्तिविषयक प्रचुर साहित्य-सम्पदा को देखकर ही यह स्पष्ट हो जाता है कि किस तरह यह भाव-भक्ति-साधना युग-युग से भारतीय लोकमानस को उत्प्रेरित एवं अनुप्राणित करती आई है। भक्ति के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों पक्षों का सम्यक् निरूपण भारतीय वाङ्मय की प्रमुख विशेषता है, जहाँ श्रीमद्भागवत, 'भगवद्भक्तिचन्द्रिका', 'शाण्डिल्य-भक्तिसूत्र', 'नारदभक्ति सूत्र', 'भक्तिरसामृतसिन्धु', 'उज्ज्वलनीलमणि', 'भगवद्भक्तिरसायन', 'अलङ्कारकौस्तुभ', 'रस-कलिका', 'भक्ति-सन्दर्भ' आदि धार्मिक एवं शास्त्रीय ग्रन्थों में भक्ति-तत्त्व का सूक्ष्म एवं विस्तृत सैद्धान्तिक विवेचन किया गया है, वहाँ भक्तिरसायन के तत्त्वज्ञ भक्तों एवं सन्तों की वाणियों द्वारा उसके व्यावहारिक पक्ष को भी प्रस्तुत किया गया है।[६६] वैष्णव भक्ति मार्ग के आचार्यों ने भक्ति को स्वतन्त्र और सर्वश्रेष्ठ तथा प्रधान रस माना है। अन्य रस तो प्रकृतिभूत इसी रस की विभिन्न प्रतिकृतियाँ हैं। रूपगोस्वामी ने भक्तिरस को शृङ्गार से श्रेष्ठ बताया है।[६७] भक्ति को भाव की भूमिका से रसवत्ता की ओर ले जाने का जो कार्य प्रथमतः श्रीमद्भागवत में किया गया इसके पश्चात् इस कार्य को रूपगोस्वामी ने ही सम्पन्न किया। इन्होंने भक्ति को रसरूप में ही निरूपित किया। भक्तिरस की स्थापना का शास्त्रीय उपक्रम मध्यकाल में वैष्णव भक्ति के आन्दोलन के साथ हुआ यद्यपि इसके बीज

---

६६. श्रीमद्भागवत पुराण में भक्तिरस का निरूपण-पृ.-११४-११५ से उद्धृत।

६७. 'अत्रैव परमोत्कर्षः शृङ्गारस्य प्रतिष्ठितः।' तथा च मुनिः बहुवार्यते यतः खलु यत्र प्रच्छन्नकामुकत्वं च। या च मिथो दुर्लभता सा परमा मन्मथस्य रतिः। लघुखमत्र यत्प्रोक्तं तत्तु प्राकृतनायके। न कृष्णे रसनिर्यासस्वादार्थमवतारिणि। (उज्ज्वलनीलमणि, नायक भेदप्रकरण, श्लोक -१६-१८)।

श्रीमद्भागवत में ही मिलते हैं। वस्तुतः वैष्णव रस साधना का मूलाधार भक्तिरस ही था। वैष्णव भक्ति मार्ग में पराभक्ति जिसे मधुरा भक्ति भी कहते है उसे हीं आचार्यों ने भक्तिरस की संज्ञा दी है। शास्त्रीय दृष्टि से मध्यकाल से पूर्व भक्तिरस की प्रतिष्ठा नहीं हो सकी थी। दक्षिण में आलवार सन्तों द्वारा समर्पण भाव से प्रभूत भक्तिगीतों की रचना की गई। डॉ. कृष्णकान्त जोशी ने अपनी पुस्तक[६८] में उल्लेख किया है कि – 'मध्यकाल' एक विशेष रसावेश में जी रहा था जब समूचे भारत में उपासना गीतों और लीला–काव्यों की मुक्तकरचना की बाढ़ आ गई थी। साहित्य की लोकभूमि पर अलौकिक तत्त्व काव्य के सोपानों से अवतीर्ण हुआ और साहित्य भी इतना बना कि सारी पूर्वागत रसचिन्तन–परम्परा को चुनौती दे उठा। यही वह आधारशिला है जिस पर भक्ति–रस–चिन्तन जो प्रतिष्ठित हुआ तो उसमें सभी रस कवलित हो गये। इस सर्वग्रासी साहित्यिक आन्दोलन ने सर्वातिशायी भक्तिरस को इस प्रकार स्थापित किया कि मधुसूदन सरस्वती जैसे अद्वैत–मनीषी को भी 'भक्तिरसायन' ग्रन्थ लिखकर उसे दार्शनिक समर्थन देना पड़ा। इसके पश्चात् १३वीं शताब्दी में वोपदेव ने भक्ति रस का विस्तार करते हुए 'भगवन्मनोनिवेश' को भक्तिरस का स्थायी–भाव कहा। भक्तिरस के सावयव–निरूपण का श्रेय गौड़ीय वैष्णवाचार्यों को है। इन्होंने राधाकृष्ण को आलम्बन, जीवात्मा की परमात्मा में मधुरा रति को इसका स्थायीभाव, रूप, गुण, चेष्टा, भगवान की लीला से सम्बद्ध समग्र विषय उद्दीपन विभाव, भगवान् को ही विषयालम्बन जीवात्मा या भक्त आश्रयालम्बन माना है। स्मित, नृत्य गीतादि एवं अनुभाव, स्तम्भादि सात्त्विक अनुभाव हैं तथा निर्वेद, हर्षादि तैंतीस सञ्चारी भाव इन आचार्यों द्वारा माने गए हैं। इन विभावानुभाव, सञ्चारी भावादि के द्वारा सात्त्विक रतिरूप भाव या वृत्ति का भक्त हृदय में रसास्वादन की स्थिति तक पहुँचना ही भक्तिरस की निष्पत्ति का कारण बनता है। इस प्रकार इसी आधार पर मधुसूदन सरस्वती, रूपगोस्वामी, जीवगोस्वामी, सनातन गोस्वामी आदि ने भक्ति को साहित्य में रसरूप में प्रतिष्ठित किया।

---

६८. श्रीमद्भागवत में भक्तिरस का शास्त्रीय निरूपण, पृष्ठ – १४३ से उद्धृत।

सम्पादित मातृका विवरण-

'गोपालविवेक' ग्रन्थ की मातृका की एकमात्र प्रति मुझे राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, 'गङ्गानाथ झा परिसर' के प्रयाग स्थित 'पाण्डुलिपि संग्रहालय' से प्राप्त हुई। प्राचीन कागज पत्र पर लिखित इस मातृका का विवरण निम्नवत् है -

पत्र संख्या	-	२९
पृष्ठ संख्या	-	५८
अधिगम संख्या	-	४९२२५
आकारः	-	२१×१० (से.मी.)

इस हस्तलेख की अन्य कोई भी प्रति इस हस्तलेख के सम्पादन की अवधि में मुझे प्राप्त नहीं हुई। अतः इस ग्रन्थ का सम्पादन उक्त एकमात्र हस्तलेख के आधार पर ही किया गया है। कैटेलॉगस कैटेलॉगरम् में 'गोपालविवेक' का उल्लेख भक्ति काव्य के रूप में किया गया है।[६९] कृष्णामचार्या ने अपने संग्रह - 'History of Classical Sanskrit Literature' में यह सूचना दी है कि पीटर्सन की रिपोर्ट में इस हस्तलेख की एक प्रति बाम्बे सर्किल में होने का उल्लेख है।[७०]

पीटर्सन के रिपोर्ट के जिस खण्ड में इसका उल्लेख है, वह मुझे प्राप्त नहीं हुआ। अतः इस मातृका के विषय में अन्य कोई सूचना ग्रन्थ प्रकाशन पर्यन्त प्राप्त नहीं हो सकी। न्यू कैटलॉगस कैटेलॉगरम् में 'गोपाल' नाम के अनेक रचनाकारों का उल्लेख है, परन्तु इस ग्रन्थकार द्वारा अपने नाम के अतिरिक्त अन्य कोई भी सूचना न देने के कारण यह उनमें से कौन हैं, यह निर्धारित करने का कोई प्रमाण मुझे प्राप्त नहीं हुआ है।

---

६९. कैटेलॉगस कैटेलॉगरम् , पृष्ठ - १६३ - Bhakti L. 1357 (and)

७०. Peterson's Reports of the operations in Search of Sanskrit Mss. in Bombay Circle (1toIV), (PR.VI:33)

ग्रन्थकार एवं ग्रन्थ परिचय –

इस ग्रन्थ के कर्त्ता ने मातृका की श्लोक संख्या अढ़तालिस (४८) में, पचासवें श्लोक की टीका में तथा मातृका की पुष्पिका में स्वयं अपने नाम का उल्लेख किया है। ग्रन्थ का नाम भी लेखक गोपाल ने अपने नाम पर '**गोपालविवेक**' रखा है ऐसा प्रतीत होता है। मातृका के लिपिकार मङ्गल प्रसाद पाठक का नाम एवं हस्तलेख का समय १८८० संवत् मातृका की पुष्पिका में उल्लिखित है–

'**श्रावणशुद्ध पूर्णिमायां लिखितं श्रीपाठक मङ्गलप्रसादेन।।**

संवत १८८०।।'

ग्रन्थ के प्रतिपाद्य विषय का अवलोकन करने पर यह 'गोपाल' नामक किसी भक्त कवि द्वारा विरचित भक्ति काव्य प्रतीत होता है। ग्रन्थकार 'गोपाल' से सम्बन्धित और कोई सूचना तथा उनकी किसी अन्य रचना की जानकारी अद्यावधि प्राप्त नहीं हो सकी है। परन्तु अन्तः साक्ष्य के आधार पर ग्रन्थ का अध्ययन करने पर गोपाल के व्यक्तित्व और वैदुष्य का अनुमान निश्चित ही किया जा सकता है।

'गोपालविवेक' काव्य का तथा रचनाकार द्वारा स्वयं की गई उसकी टीका का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि ग्रन्थकार भक्ति से भावित हृदय का कवि ही नहीं अपितु धर्मशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, पुराण और वैष्णव भक्ति साहित्य आदि के गहन ज्ञान से सम्प्रक्त भी है। ग्रन्थ की टीका में प्रदत्त विविध ग्रन्थों के उद्धरण कवि की बहुज्ञता के प्रमाण हैं। मूल श्लोकों की टीका करते हुए गोपाल ने गीतगोविन्द, विष्णुपुराण, ब्रह्मपुराण, पद्यावली, पद्मपुराण, सूर्यहृदय, गरुणपुराण,

---

७१. वृ.र., केदार भट्ट, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, पृ.–६७, प्रथम संस्करण १९८५ –

इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु।
स्मरन्ति जातिष्विदमेव नाम।।३।।

इसकी व्याख्या करते हुए बलदेव उपाध्याय कहते हैं कि जिस प्रकार त्रिष्टुप जाति में होने वाले इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा के मिश्रण को उपजाति कहते हैं, उसी प्रकार जगती जाति में परिगणित इन्द्रवंशा तथा वंशस्थ नामक वृत्तों के मिश्रण को भी विद्वान् 'उपजाति' कहते हैं।

गीता, विज्ञप्तिशतक, महाभारत, योगवाशिष्ठ, मार्कण्डेयपुराण, नारदीयपुराण, स्कन्दपुराण, भविष्योत्तरपुराण, श्रीमद्भागवतपुराण आदि ग्रन्थों के श्लोकों को उद्धृत किया है। रचनाकार को धर्मशास्त्रीय विषयों का भी ज्ञान है। उदाहरण स्वरूप –

भ्रमन्भ्रमन्योनियोनिषु चराचरेषु,
भक्तिर्न जाता तव पादपद्मे ।
उपोषिता नैवतिथि प्रिया ते,
सुखी कथं स्यां करुणानिधेऽहम् ।।७।।

उपर्युक्त श्लोक में एकादशी तिथि में उपवास के महत्त्व को बताया गया है। धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में इस एकादशी व्रत की महिमा का विस्तृत वर्णन मिलता है।

इसी प्रकार –

सापूय शोणित मूत्र विड्वहा,
वर्त्तते वैतरणी सुदुस्तरा ।
कथं तरिष्येऽकृत गोप्रदानः,
सुखी कथं स्यां करुणानिधेऽहम् ।।४२।।

इस श्लोक में वर्णित वैतरणी नदी का उल्लेख तथा उसे पार करने के लिए गोदान की अनिवार्यता का महत्त्व भी धर्मशास्त्रों में विस्तार से वर्णित है।

युगादि मन्वादि न राहुग्रस्ते
दिवाकरे वै धृति पुण्ययोगे।
दत्तं न किञ्चित्तव तुष्टि हेतोः,
सुखी कथं स्यां करुणानिधेऽहम् ।।२२।।

यहाँ जो 'पुण्यकाल' का उल्लेख है। इसकी चर्चा भी धर्मशास्त्रीय विषयों के अन्तर्गत आती है। इससे स्पष्ट है कि रचनाकार ने धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों का गहन अध्ययन प्राप्त किया था।

वैष्णव सम्प्रदाय के साहित्य का सर्वाधिक प्रभाव पश्चाद्वर्ती भक्त कवियों

पर पड़ा। प्रस्तुत ग्रन्थ में चौदहवें पद्य में वैष्णव परम्परा की नवधा भक्ति का उल्लेख करते हुए टीका में उसको स्पष्ट भी किया गया है। 'गोपालविवेक' पर पाञ्चरात्र–साहित्य का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। ग्रन्थ के मङ्गलाचरण श्लोक की टीका में ग्रन्थ के प्रयोजन को स्पष्ट करते हुए 'नारद पाञ्चरात्र' के चतुर्थ रात्र के द्वितीय अध्याय के पद्यों के भावार्थ को ग्रहण किया है। यह इस ग्रन्थ की शैली का वैशिष्ट्य है, कि लेखक विविध ग्रन्थों के श्लोकों के अंशों को प्रतीक रूप में देकर उसके आशय को ग्रहण कर व्याख्यायित करता चलता है। यह शैली भक्तिसूत्रों में भी नारद एवं शाण्डिल्य ने अपनायी है। यहाँ उसी शैली का अनुवर्तन किया गया है। कहीं–कहीं पर उद्धृत पद्यों में पाठभेद भी प्राप्त होता है। मुख्यतः इन्द्रवंशा तथा वंशस्थ के मिश्रण से बने उपजाति छन्द का प्रयोग कर मधुर, गेय पद्यों की रचना की गई है। शार्दूलविक्रीडित, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा इत्यादि छन्दों में भी कुछ पद्य रचित हैं। पाठकों की सुविधा के लिए मूल श्लोकों का अनुवाद भी दिया गया है।

यथासम्भव पूर्ण और शुद्ध पाठ हो इसका प्रयास किया गया है तथापि जो अंश किसी भी प्रकार स्पष्ट नहीं हो सके उन्हें चिन्हित (?) कर दिया गया है। भविष्य में यदि मातृका की अन्य प्रति उपलब्ध हुई, तब इन स्थलों को स्पष्ट किया जा सकता है।

गोपालविवेक में भक्ति–

'गोपालविवेक' में गोपाल ने भक्ति का कोई सैद्धान्तिक विवेचन प्रस्तुत नहीं किया है। 'गोपालविवेक' पर किसी एक विशेष भक्ति सम्प्रदाय का प्रभाव भी दृष्टिगत नहीं होता। इस कृति में वैष्णव आचार्यों द्वारा प्रतिपादित भक्ति–विषयक प्रायः सभी दृष्टिकोणों का अन्तर्भाव प्रतिभासित होता है। आनन्दकन्द[७२], करुणानिधान, चतुर्भुज, गरुडासीन, भक्तवत्सल, पीताम्बरधारी, कमलनयन, गोपवेषधारी, कृष्ण ही कवि के वन्दनीय हैं।[७३] हरिनाम स्मरण ही कवि का

७२. गोपालविवेक –४।

७३. गोपालविवेक – १०–११।

अभीष्ट है।[७४] प्रथम श्लोक की व्याख्या में ईश्वर आराधन को ही धर्म कहा है तथा भक्ति को ही परम् धर्म कहा गया है।[७५] भक्ति को स्पष्ट करते हुए कवि कहता है– 'तपसा भजामीति शरीरेण, कर्मणा सेवा दर्शिता। स्तौमि वाचा, चिन्तये मनसा एतत्समुदितं भक्तिशब्दवाच्यमिति दर्शितम्।[७६] अर्थात् शरीर से आराध्य की सेवा रूप तप, वाणी से उसकी स्तुति तथा मन से निरन्तर चिन्तन यह तीनों समुदित रूप से भक्ति शब्द के वाच्यार्थ हैं। भगवत् चरणारविन्द का पूजन एवं चिन्तन ही कवि का काम्य है।[७७] विष्णु के स्वरूप और गुणों का कीर्तन एवं श्रवण करना ही तापत्रय से मुक्ति का उपाय है।[७८] बिना नवधा भक्ति की साधना किए संसार से निवृत्ति सम्भव नहीं इस प्रकार नवधा भक्ति के प्रत्येक उपाय के आलम्बन की कामना कवि करता है। कवि समस्त जीवों में विष्णुबुद्धि उत्पन्न होने को भक्ति के लिए अनिवार्य मानता है वह भक्ति की पराकाष्ठा की कामना करता है जहाँ समदृष्टि 'एकोहि विष्णुर्बहुरूपधारी' जाग्रत हो जाती है।[७९]

अपने आराध्य कृष्ण की लीलास्थली ब्रज भ्रमण एवं गङ्गा स्नान[८०] को वह आवश्यक मानता है तथा कृष्ण के प्रति दास्यभाव से भक्ति को स्वीकार करता है। वह कृष्ण के दासभक्त के दास के भी ध्यान या पूजन को कृष्ण की भक्तिदायक तथा मुक्तिदायक स्वीकारता है[८१] तथा भक्तिविहीन होने पर ब्राह्मण होने या दान यज्ञ व्रतादि कर्म को निष्ठापूर्वक करने पर भी तापत्रय से मुक्ति नहीं

---

७४. गोपालविवेक – १।

७५. गो.वि. – 'ततस्तु धर्माद्भक्तिर्भवति स परो धर्मः। भक्तिविहीनो धर्मः केवलं श्रम एव।' प्रथम श्लोक की व्याख्या।

७६. प्रथम श्लोक की सोपज्ञ व्याख्या, पृ. ३१।

७७. गो.वि. ३,५।

७८. गो.वि. १०, ११, १४।

७९. गो.वि. १६।

८०. गो.वि. १९।

८१. गो.वि. १८।

हो सकती।[८२]

नामस्मरण की महिमा को कवि सर्वोपरि तथा भक्ति का आधार मानता है। कवि के अनुसार शास्त्रों में यद्यपि तत्त्वज्ञान को निःश्रेयस सिद्धि का साधन माना गया है तथापि उसका मानना है कि भक्ति के बिना तत्त्वज्ञान नहीं उत्पन्न हो सकता तथा नामोच्चारण के बिना भक्ति नहीं हो सकती।[८३]

सगुण भक्ति के साधनों का अभ्यास करते-करते यही भक्ति गुणातीत पर और व्यापक ब्रह्म की प्राप्ति कराने वाली होती है। इस प्रकार कवि ने सगुण भक्ति साधना से निर्गुण, निर्विकार, परब्रह्म की प्राप्ति को ही परम लक्ष्य माना है। कवि ने भक्ति को वैराग्यदायिनी, मोक्षदायिनी और मुक्तिदायिनी माना है।[८४] नवधा भक्ति के उपायों में नाम-स्मरण को सर्वोपरि माना है। भक्ति के बिना तत्त्वज्ञान नहीं होता। अतः भक्ति से ही मोक्ष प्राप्य है तथा तत्त्वज्ञान से भक्ति श्रेष्ठ है।[८५]

गोपालविवेक में श्लोकों की स्वयंकृत टीका में ग्रन्थकार ने भागवत, महाभारत, विभिन्न पुराण, रामायण आदि ग्रन्थों से अनेक श्लोकों को उद्धृत किया है, जिससे स्पष्ट होता है कि इन्होंने भागवत तथा पुराणों में वर्णित भक्ति के स्वरूप को स्वीकार किया है। श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'[८६] ने 'संस्कृति के चार अध्याय' पुस्तक में भागवत की भावमूलक भक्ति को आल्वार संतों तथा तमिल प्रबन्धों से प्रेरित माना है। इस ग्रन्थ की भूमिका लेखन हेतु विभिन्न ग्रन्थों का आलोडन करते हुए मुझे डॉ. रवीन्द्र कुमार कुलशेखर द्वारा सम्पादित आल्वार सन्त कुलशेखर के ग्रन्थ 'मुकुन्दमाला' की प्राप्ति हुई। 'मुकुन्दमाला' आल्वार

---

८२. गो.वि. ३८।

८३. 'तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयससाधनम्। रामनाममात्रेण कथं मोक्षः? सत्यं न मृषा। भक्तिं विना तत्त्वज्ञानं नोत्पद्यते। नामोच्चारणं विना भक्तिर्न भवति।' गो.वि. श्लोक-४५ की व्याख्या।

८४. गो.वि. ४८।

८५. भक्तिं विना तत्त्वज्ञानं नोत्पद्यते। तस्माद्भक्त्या मोक्षः। तत्त्वज्ञानद्भक्तिर्गरीयसी। गो.वि. श्लोक ४८ की टीका।

८६. संस्कृति के चार अध्याय, पृ. २९६।

ग्रन्थों में एकमात्र संस्कृत कृति है। अन्य सभी कृतियाँ तमिल भाषा में रचित हैं। इस ग्रन्थ की अध्ययन की अवधि में मैंने पाया कि 'गोपालविवेक' में मुकुन्दमाला के कुछ पद्यों को भी कहीं कुछ परिवर्तन के साथ मूल श्लोक रूप में तथा कहीं यथावत् उदाहरण रूप में टीका में ग्रहण किया गया है। अतः गोपाल ने तमिल आल्वारों के भक्तिभाव को भी ग्रहण किया यह भी स्पष्ट है।

वस्तुतः काव्यसौन्दर्य की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण न होते हुए भी भक्तिधारा प्रधान काव्यसरणि के महत्त्वपूर्ण स्तम्भ की दृष्टि से यह ग्रन्थ अवश्य उपादेय होगा।

शब्द-सङ्केत

१.	अहि.सं.	अहिर्बुध्न्य संहिता
२.	तै.उ.	तैत्तरीय उपनिषद्
३.	ना.भ. सूत्र	नारद भक्ति सूत्र
४.	ना.पा.	नारद पाञ्चरात्र
५.	भ.र.	भक्ति रसायन
६.	भ.सू.	भक्तिमीमांसा सूत्र
७.	भा.पु.	भागवत पुराण
८.	वि.चू.	विवेक चूड़ामणि
९.	शा.भ.सू.	शाण्डिल्य भक्तिसूत्र
१०.	शा.सं.	शाण्डिल्य संहिता

श्रीगोपालविरचितः

श्रीगोपालविवेकः

।। श्रीगणेशाय नमः ।।

नत्वा गणेशं सुरकोटिपूजितं
गजेन्द्रवक्त्रं नवकुङ्कुमारुणम्।।
संसारसारं हरिनाम मङ्गलं
सतां प्रवक्ष्ये मधुरं हि जीवनम्।।१।।

भावार्थ – देव समूह द्वारा पूजित, एरावत के समान मुख वाले, नूतन कुंकुम के समान रक्तवर्ण वाले गणेश जी को नमस्कार करके संसार के सारभूत, मङ्गलप्रद, सज्जनों के (भक्तों के) जीवन स्वरूप, मधुर (तापत्रयनिवर्तक) हरि नाम की महत्ता को मेरे द्वारा कहा जाएगा।

व्याख्या–ग्रन्थनिर्विघ्नपरिसमाप्त्यर्थं मङ्गलमाचरति नत्वेति। हरिनाम प्रवक्ष्ये। किं कृत्वा ? गणेशं नत्वा। गणानां विघ्नानामीशं प्रभुं नमस्कृत्य। कथंभूतं गणेशं ? सुरकोटिपूजितम्। सकलदेववृन्दैर्वन्दित–चरणयुगलम्। पुनः कथंभूतं गणेशम्? गजेन्द्रवक्त्रम्। गजेन्द्रो ह्यैरावतस्तस्य वक्त्रमिव वक्त्रं यस्य तम्। पुनः कथंभूतं गणेशम्? नवकुङ्कुमारुणम्। नूतनकुङ्कुमं तद्वदरुणवर्णम्। कथंभूतं हरिनाम? संसारसारम्। संसरतीति संसारः वारं वारं भवतीति। तस्मिन् हरिनाम एव सारम् अन्यत् सर्वमसारम्। तथा च गीतगोविन्दे – *'श्रृणु सुखदं शुभदं भवसारम्'* । तथाहि विष्णुपुराणे – *'असारे खलु संसारे सारमाराधनं हरेः'*। तथाहि ब्रह्मपुराणे– *'एक एव हि सारोऽत्र संसारे क्षणभंगुरे। कमलाकान्तपदाब्जभक्तिभावोऽखिलप्रदः'*।। पुनः कथंभूतं हरिनाम। मङ्गलम् आनन्दजनकं।। तथाच पद्यावल्याम्–

मधुरमधुरमेतन्मङ्गलं मङ्गलानाम्
सकलनिगमवल्ली सत्फलं चित्स्वरूपम्।
सकृदपि परिगीतं श्रद्धया हेलया वा
भृगुवर नरमात्रं तारयेत् कृष्णनाम।

पुनः कथंभूतं हरिनाम ? सतां जीवनम्। सतां भक्तानां हरिनाम एव जीवनं सर्वस्वं नान्यत्। पुनः कथंभूतं हरिनाम ? मधुरं तापत्रयनिवर्त्तकं मोक्षप्रदमित्यर्थः।।

अस्मिन् ग्रन्थे केवलमीश्वराराधनलक्षणो धर्मो निरूप्यते। धर्मो द्विविधः प्रवृत्तिलक्षणो निवृत्तिलक्षणश्च। तत्र यः स्वर्गाद्यर्थः स प्रवृत्तिलक्षणः। ततस्तु धर्माद्भक्तिर्भवति स परो धर्मः। भक्तिविहीनो धर्मः केवलं श्रम एव। तस्माद्भक्तिप्रधान एव धर्मोऽनुष्ठेयः। तथाहि पद्मपुराणे- *'इह खलु भगवान् परमकारुणिकः श्रीमहादेवः कलिकल्मषमलिनीकृतान्तःकरणानां वैदिकेषु विविधकर्मस्व-सामर्थ्यमाकलय्य तदनुजिघृक्षया सकलशास्त्रसंमतमभिमतफलदातृ भगवद्विष्णुनामफलं जनानुपदिदेश- देवैरपि या गतिर्न्न प्राप्या अक्षया क्लेशवर्जिता तां गतिं विष्णुपूजनेनैव प्राप्नुवन्ति।'* ननु तत्प्राप्त्युपाया अन्येऽपि श्रवणमननादयः सन्त्येव शास्त्रविहितास्तत्राह न तां गतिम्। किन्तु भागवता एव प्रतिपद्यन्ते इति भावः। अत्र कारणमाह *'निश्चयं नाधिगच्छन्ति वेदैर्विभ्रान्तचेतसः।'* किं तत्त्वं, कः परमार्थः, किं पदं प्राप्यमिति निश्चयं नाधिगच्छन्ति। ननु निरस्तसमस्तदोषस्य स्वत एव प्रमाणभूतस्य वेदस्य कथं विपर्यासकत्वमत आह विष्णुविमुखा इति। एतेषां वेदसहस्रेणापि निश्चयानुपपत्तिरिति भावः। विष्णुबहिर्मुखानां कर्मभिः परमपदस्य आप्यतां दर्शयति तुलापुरुषदानाद्यैरिति। एतैरपि कर्मभिर्वैष्णवपदं न प्राप्नुवन्ति। सर्वप्रकारैर्विष्णुमनाश्रित्य विष्णौ कर्मसमर्पणमकृत्वेत्यर्थः। तस्मिन् समर्पितं न्यूनमपि पूर्णतामासाद्य स्वफलं

साधयतीति भावः। ये भक्ता अनन्यगतय इति। न विद्यते विष्णोरन्या गतिः शरणं येषां ते अनन्यगतयः। भोगिनोऽपि तपोरहिता अपि ज्ञानादिविशेषणान्तररहिता अपि विष्णोर्नाममात्रमेकं जल्पन्तीत्येवं विधायां गतिं प्राप्नुवन्ति तां धार्मिका अपि न प्राप्नुवन्ति। कर्मत्यागप्रत्यवायजनकत्वमत आह। कथं सर्वधर्मविरहितस्य नाममात्रैकजल्पकस्य श्रेयःप्राप्तिरित्युच्यते विष्णुभक्तिसामर्थ्यादिति चेत् उक्तं च –

'वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परः पुमान्।

विष्णुराराध्यते पन्था नान्यस्तत्तोषकारणम्। ।

न चलति निजवर्णधर्मतो यः।'

इत्यादिवत् श्रुतिः स्मृतिश्च। परमेश्वराज्ञारूपतया तदुल्लङ्घने सति प्रत्यवायापत्तिश्चेदत आह सर्वे विधिनिषेधा इति। एतयोः स्मरणविस्मरणयोः सर्वे विधिनिषेधाः किङ्कराः अनुगताः स्युः। यदि भगवान् स्मृतस्तर्हि सर्वे विधयोऽनुष्ठिताः। यदि विस्मृतस्तर्हि सर्वे निषेधाः। भगवन्नामानुस्मरणेन तु तदङ्गरहितमपि संपूर्णं सफल-जनकमित्याद्रकत्वात्तदेव मुख्यमिति। उक्तं च- *'यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या'* इत्यादि। ननु सर्वथा वैदिककर्मपरित्याग एव विवक्षितः। *'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'* इत्यादि वासुदेववचनात्। सर्वथा भगवन्नामकीर्तनस्य सर्वत एव श्रैष्ठ्यमित्यत्र न कस्यापि विप्रतिपत्तिः। देवतान्तरपूजकानां संसारानिवृत्तेरुत्तरोत्तरा सृष्टिः स्यात्। विष्णुपूजनेन तु संसारनिवृत्तौ सर्वेषां मोक्षाप्त्या सृष्टेरुत्साद एव स्यादिति भावः।

तपसा भजामीति शरीरेण कर्मणा सेवा दर्शिता। स्तौमि वाचा, चिन्तये मनसा एतत्समुदितं भक्तिशब्दवाच्यमिति दर्शितम्। एतत्तु मुक्तेर्मुख्यं साधनम्। इतराणि त्वमुख्यानि दुष्करत्वात् सन्दिग्धसिद्धित्वाच्च। तथाच गीतायाम्–

यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन् यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्।।

तस्माच्छ्रीकृष्णभजनमेव कर्त्तव्यमिति भावः।।१।।

संसारचक्रे परिवर्तमानः
पादाम्बुजं ते नहि चिन्तयामि।।
अर्थेषु दारेषु सुतेषु रीतिः
सुखी कथं स्यां करुणानिधेऽहम्।।२।।

भावार्थ - हे करुणानिधान! संसारचक्र में भ्रमण करते हुए (कालचक्र में धूमते हुए) धन में, स्त्री में और पुत्र में प्रीति करता हूँ। तेरे चरणकमलों का चिन्तन नहीं करता, तब मैं (जीव) किस प्रकार तापत्रय से सुखी हो सकता हूँ।

व्याख्या- संसारचक्र इति।। जीवो वदति परमात्मानं परमेश्वरं प्रति। हे करुणानिधे तापत्रयात् कथं सुखी स्याम्। केन प्रकारेण संसारान्मुक्तो भवामि। आध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैविकास्तापस्त्रयः। तत्राध्यात्मिको द्विविधः शारीरो मानसश्च। अध्यात्मिकं किम् ? आत्मानं कार्यकारणसङ्घातनिमित्तमधिकृत्य भवतीत्यध्यात्मिकम्। शरीरदुःखमाह

शिरोरोगप्रतिश्यायज्वरशूलभगन्दरैः ।
गुल्मार्शश्वासश्वपथुः छर्दादिभिरनेकधा।।
तथाक्षिरोगातीसारकुष्टाद्यामयसंज्ञकैः ।
भिद्यते देहजस्तापो मानसं श्रोतुमर्हसि।
कामक्रोधभयद्वेषलोभमोहविषादजः ।
शोकासूया च मानेर्ष्यामात्सर्यादिभवस्तथा।।

मानसोऽप्यनेकधा। अयमाध्यात्मिकस्तापः। अथाधिभौतिकः। भूतनिमित्तत्वेनाधिकृत्य भवतीत्याधिभौतिकः।

मृगपक्षिमनुष्याद्यैः पिशाचोरगराक्षसैः।
सरीसृपाद्यैश्च नृणां जायते चाधिभौतिकः।।

शीतोष्णवायुवर्षाम्बुविद्युदादिसमुद्भवः।

अथाधिदैविकः केवलं दैवमेवाधिकृत्य भवतीत्याधिदैविकः।

गर्भजन्मजराज्ञानमृत्युनारकजं तथा।
सुकुमारतनुर्गर्भे जन्तुर्बहुमलावृते।।

उल्वसंवेष्टितो भग्नपृष्ठग्रीवास्थिसंहतिः।
अत्यम्लकटुतीक्ष्णोष्णैर्लवणैर्मातृभोजनैः।।

अतितापभिरत्यर्थं वर्द्धमानोऽतिवेदनः।
प्रसारणाकुञ्चनादौ नाङ्गानां प्रभुरात्मनः।।

शकृत्मूत्रमहापङ्कशायी सर्वत्र पीडितः।
निरुदवासः स चैतन्यः स्मरन् जन्मशतान्यथ।।

आस्तेगर्भेतिदुःखेननिजकर्मनिबंधनः ।
जायमानः पुरीषासृङ्मूत्रशुक्राविलाननः।।

प्राजापत्येन वातेन पीड्यमानास्थिबन्धनः।
अधोमुखैश्च क्रियते प्रबलैः सूतिमारुतैः।।

क्लेशैर्निष्क्रान्तमाप्नोति जठरात् मातुरात्मनः।
कण्टकैरिव तुन्नाङ्गैः क्रकचैरिव दारुणः।।

पूतिव्रणान्निःपतितो धरण्यां क्रमिको यथा।
मूर्छामवाप महतीं संस्पृष्टो बाह्यवायुना।।

विज्ञानरहितो जन्तुर्मायया संवृतस्तदा।

कस्मात्तापत्रयं दुःखं भवति यतस्तवचरणारविन्दं न चिन्तयामि। तव पादपद्मे रतिर्न। रतिः प्रीतिः क्व ? अर्थादिषु धनेषु योषित्सु कथम्भूतोऽहम् ? संसारचक्रे परिवर्त्तमानः। कालचक्रे पतितः। तथा च सूर्यहृदये–

नवतिर्योजनलक्षाणि सहस्राणि च सप्ततिः।
यावद् घटिकमात्रेण तावच्चलति भास्करः।

एतादृशे कालचक्रे पतितोऽस्मि। यथा कुलालचक्रे मृत्पिण्डो भ्रमति तथाऽहं नानायोनिषु बम्भ्रमीमि। तथा च भागवते–

क्वचित् पुमान् क्वचिच्च स्त्री क्वचिन्नुभयमन्दधीः।
देवो मनुष्यस्तिर्यग् वा यथा कर्मगुणं भवः।।

मृत्पिण्डभ्रमणे कुलालदण्डयोः कारणम्। मद्भ्रमणेऽपि कारणमस्ति। किम्? पुण्यपापयोः कारणम्। यद्वा संसारचक्रे परिवर्त्तमानः परिसमन्ताद्भावे जननमरणाभ्यां भ्रममाणः। अर्थेषु सुतेषु योषित्सु प्रीतिं कुर्वन्नपि तव पादाम्बुजं चिन्तयामीति। हि निश्चयेन तेन सुखी स्यां संसारान्मुक्तः। ये तिर्यग्योनिगताऽपि पादाम्बुजं चिन्तयन्ति ते धन्या विबुधेभ्योऽपि गरिष्ठाः गृध्रगजेन्द्रादयः। ये मर्त्त्याः पादाम्बुजं न चिन्तयन्ति ते वराका पशवो भारवाहका गर्दभोष्ट्रतुल्याः। परमेश्वरभजनात् संसारचक्रं विलीयते, तद्भजनं न जातं, कथं तापत्रयात् सुखी स्याम्।।२।।

यत्पादपद्मं मुनिभिश्च सेवितं नुतं
विरिञ्च्यादिभिरर्चितं शुभम्।
त्यक्त्वा परं तं विषयेषु बुद्धिः
सुखी कथं स्यां करुणानिधेऽहम्।।३।।

भावार्थ –करुणानिधान! मुनियों के द्वारा सेवित ब्रह्मादि के द्वारा स्तुत मंगलप्रद सर्वोत्कृट आपके चरणकमल को छोड़कर विषयों में मेरी बुद्धि है, तब मैं कैसे तापत्रय से सुखी रह सकता हूँ।

व्याख्या– यत्पादपद्मेति।। हे करुणानिधे! तव चरणकमलस्य महात्म्यं शेषोऽपि वक्तुं न शक्नोति। तथा च भागवते–

गायन् गुणान् दशशतानन आदिदेवो।
शेषोऽधुनापि समवश्यति नास्य पारम् ।।

एवम्भूतं पादपद्मं विहाय विषये मे बुद्धिः। कथम्भूतं पादपद्मम् ? मुनिभिश्च सेवितम्। सनकादिभिस्त्यक्तसर्वविषयैरेकाग्रचित्तैः सेव्यमानम्। पुनः कथम्भूतम्? विरञ्च्यादिभिर्नुतं ब्रह्मवेदैस्तुतं चकारादर्चितम्। पुनः कथम्भूतम् ? शुभं मङ्गलप्रदम्। पुनः कथम्भूतम् ? परं सर्वोत्कृष्टं मोक्षप्रदम्। यद्भजने मुक्तानामौत्सुक्यं को नाम न भजेत्। एतादृशं पादपद्मं विहाय विषये बुद्धिः स्रक्चन्दनवनितादिषु। तथा च भागवते–

सम्पदः स्वप्नसंकाशा यौवनं कुसुमोपमम्।
तडिच्चञ्चलमायुश्च कस्य स्याज्जानतो धृतिः।।
स्वप्नलब्धा यथा लाभाः क्षणमेव सुखावहाः।
तद्विधा हि नरश्रेष्ठ नराणामर्थसंपदः।।

विषये बुद्धिरज्ञानात् सम्भूता। तथा च विष्णुपुराणे–

अज्ञानतमसाच्छन्नो मूढान्तःकरणोऽप्यहं ।
न जानामि कुतः कोऽहं क्वाहं गन्ता किमात्मकः।।
केन बन्धेन बद्धोऽहं कारणं किमकारणम्।
किं कार्यं किमकार्यं वा किं वाच्यं किं च नोच्यते।।

को धर्मः कश्च वाऽधर्मः कस्मिन् वर्तेऽथ वा कथम्।
किं कर्तव्यमकर्तव्यं किं वा किं गुणदोषवत्।।
एवं पशुसमैर्मूढैरज्ञानप्रभवं महत्।
अवाप्यते नरैर्दुखं शिश्नोदरपरायणैः।।

विषयभोग्यं मधुविषान्नभोजनजन्यं सुखवत्। तथा च गरुडपुराणे-

स्वस्वरूपमजानन् वै जनोऽयं दैवमोहितः।
विषयेऽपि सुखं वेत्ति पश्चात्पाके विषान्नवत्।।

एतावत्कालपर्यन्तं विषयकृतदोषेण दुःखमनुभूतं तस्माद्विषयवासनां छिन्धि स्वभक्तिं देहि येन तव पादाम्बुजमकरन्दमास्वादितं तस्य कैवल्येऽपि रुचिर्न्न। भक्तिं विहाय मे बुद्धिः, कथं तापत्रयात् सुखी स्याम्।।३।।

दानं व्रतं तीर्थतपः सुतप्तं
भोगेच्छया नित्यमनोरथेन।।
आनन्दकन्दे त्वयि नार्पितं तत्
सुखी कथं स्यां करुणानिधेऽहम्।।४।।

भावार्थ – हे करुणानिधान! नित्य मनोरथ के द्वारा (इन्द्रलोक गमनादि) भोगों की इच्छा से दान, व्रत, तीर्थ, तप भली प्रकार किए। हे आनन्दकन्द इन दानादि पुण्य को तुम्हें अर्पित नहीं किया, तब मैं (जीव) किस प्रकार सुखी रह सकता हूँ।

व्याख्या– दानमिति। हे करुणानिधे! यद्येवं वद बहुपुण्यं कृतं भवता, कथं तापत्रयात् सुखी न भवसि संसारादमुक्तोऽसि। सत्यं सम्यगुक्तम्। पुण्यं कृतं स्वधर्मोचितम्। दानं दत्तं महादानादिकम्। व्रतं कृतं कृच्छ्रचान्द्रायणादिकम्। तीर्थे तपः कृतं पञ्चाग्निसाधनम्। सुतप्तं सोपवासादिकम्। मे मनसोऽभिलाषं पश्य। नित्यमनोरथेन इन्द्रलोकगमनेन

उर्वशीभोगकामेन स्वर्गार्थं कर्म विधत्ते, न मोक्षार्थम्। धर्मोऽर्थः कामश्चेति यस्त्रिवर्गः परस्य पुंसः स्वात्मार्पणसाधनं चेत्तर्हि सत्यं मन्येऽन्यथा तदसत्यमेव नारायणायेति समर्पये तथाऽसति सकलमपि कर्म भागवतधर्मो न भवतीति भावः। परमेश्वराय निवेदनं तत्सेवकतया समर्पणं न कृतम्। तथा च भागवते–

तपस्विनो दानपरा यशश्विनो
मनस्विनो मन्त्रविदः सुमङ्गलाः।
क्षेमं न विन्दन्ति विना यदर्पणं
तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः।।

तथा हि गीतायाम्–

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।

इदं ममाज्ञानं त्वयि आनन्दकन्दे आनन्दसमूहे ब्रह्मणि तत् सर्वं पुण्यं कृष्णार्पणं न कृतम्, तत्तु भोगेच्छया कृतमप्सरोभिः सह विहरिष्यामि भोगादेव पुण्यक्षयः पुण्यजितो लोकः क्षीयते। इन्द्रलोकादपि पतनं पुनर्भवः पुनर्न्निधनं। तथाहि गीतायाम् –

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्त्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।।

विषये मे मनस्तापत्रयात् कथं सुखी स्याम्।।४।।

भवच्छिदं ते चरणं सुरम्यम्
पद्मार्चितं पद्मभवेन नित्यम्।।
ध्येयं शरण्यं नहि चिन्तितं तत्
सुखी कथं स्यां करुणानिधेऽहम्।।५।।

भावार्थ – हे करुणानिधान! भवबन्ध को नष्ट करने वाले, मनोहर, लक्ष्मी द्वारा पूजित ब्रह्मा द्वारा नित्य ध्यान करने योग्य और शरणप्रदान करने वाले (रक्षक) तुम्हारे चरणों का ध्यान (भक्ति) नहीं किया, तब मैं (जीव) किस प्रकार सुखी हो सकता हूँ।

व्याख्या– भवच्छिदमिति। हे करुणानिधे! तव चरणं न चिन्तितं न ध्यातम्। कथम्भूतं चरणं भवच्छिदम्। जन्मकृन्तनं संसारनाशनम्। पुनः कथम्भूतं चरणम्? रम्यं ध्वजवज्राङ्कुशैर्मनोहरं मुनिमोहकत्वात्। पुनः कथम्भूतम्? पद्मार्चितम्। पद्मा लक्ष्मीः तया पूजितम् अतिसौभाग्यत्वात्। यां लक्ष्मीं ब्रह्मादयोऽप्याराधयन्ति कदाचिदस्मान् कटाक्षेणाप्यवलोकयिष्यति तया सादरमर्चितम्। पुनः कथम्भूतम्? पद्मभवेन ब्रह्मणा पूजितम्। पुनः कथम्भूतम्? नित्यं ध्येयम्। संपदि विपदि ध्यातव्यम्। पुनः कथम्भूतम्? शरण्यम्। शरणप्रदं रक्षकम्। यद्वा नित्यं ध्येयं सर्वस्मिन् काले जाग्रता स्वपता गच्छता तिष्ठता। यद्वा सर्वास्वऽवस्थासु बाल्ये यूनि जरठे ध्यातव्यम्। तथाहि भागवते–

विपदः सन्तु नः शश्वद् तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत् स्यादपुनर्भवदर्शनम्।।

ताः संपदो मा भवन्तु यासु तव स्मरणादिकं न भवति। तापत्रयनाशार्थमयमुपायः। हरेराराधनम्। एते द्वादश गुणाः श्रीकृष्णस्याराधनाय न भवन्ति। धनं सत्कुले जन्म सौन्दर्यं पाण्डित्यं इन्द्रियनैपुण्यं कान्तिः प्रतापः उद्यमः बुद्धिः योगोऽष्टाङ्गसाधनं सहायः वक्तृत्वं भक्त्या हरेस्तोषः संभवतीत्युक्तम्। तथा च पद्यावल्याम्–

व्याधस्याचरणं ध्रुवस्य च वयो विद्या गजेन्द्रस्य का
कुब्जायाः किमु नामरूपमधिकं किं तत्सुदाम्नो धनम्।

वंशः को विदुरस्य यादवपतेरुग्रस्य किं पौरुषम्
भक्त्या तुष्यति केवलं न हि गुणैर्भक्तिप्रियो माधवः।।

स्वल्पापि भक्तिस्त्वयि न विद्यते कथं तापत्रयात् सुखी स्याम् ।।५।।

आलोकिता नो मथुरापुरी मया
यस्यां भुवो भारहराय ते भवः।
नैवाप्लुतोऽहं च कलिन्दजायां
सुखी कथं स्यां करुणानिधेऽहम्।।६।।

भावार्थ –हे करुणानिधान! पृथ्वी के भार को हरने के लिए (भक्तत्राणार्थ) जिस मथुरा नगरी में आपका जन्म हुआ। उस मथुरा पुरी को मेरे द्वारा नहीं देखा गया तथा (आपके शरीर के स्पर्श से पवित्र) यमुना स्नान नहीं किया गया, तब किस प्रकार मैं (जीव) तापत्रय से सुखी हो सकता हूँ।

व्याख्या– आलोकितेति हे। करुणानिधे! भक्तत्राणार्थमवतीर्णोऽसि यस्यां मथुरायां ते भवो जन्म सा मथुरा मया नालोकिता न दृष्टा। धिग् नेत्रे अक्ष्णोः फलं न लब्धम्। कस्मै ते भवः भुवो भारहराय। अपरं किं ब्रवीमि यस्यां कलिन्दजायां भवता जलकेलिः कृता, किन्तु त्वद्गात्रस्पर्शात् सकलकल्मषनाशिनी चतुर्वर्गफलप्रदायिनी तस्यां नैवाप्लुतोऽहं न स्नातः। कलेवरं निष्फलं गतं शरीरस्याङ्गानि तदा सफलानि भवन्ति यदा पादाभ्यां पुण्यक्षेत्रगमनं देवालयं वा हरिकथाश्रवणार्थं वा तथा च भागवते–

पादौ नृणां तौ द्रुमजन्मभाजौ
क्षेत्राणि नानुव्रजतो हरेर्यौ।

रसनया गोविन्दगुणकीर्त्तनम्।

जिह्वाऽसती दार्दुरिकेव सूते
न चोपगायत्युरुगायगाथा:।।

हस्ताभ्यां श्रीकृष्णस्य सपर्या दानं वा।

शीवौ करौ नो कुरुत: सपर्याम्
हरेर्लसत्काञ्चनकङ्कणौ वा।

अक्षिभ्यां हरे: प्रतिमादर्शनं सतां वा।

वर्हायते ते नयने नराणां
लिङ्गानि विष्णोर्न निरीक्षितो ये।

नासिकया श्रीकृष्णस्याङ्घ्रितुलस्यागन्धं न जिघ्रामि।

जीवच्छवो यस्तु न वेदगन्धम्

श्रुतिभ्यां मुकुन्दस्य कथाश्रवणम्।

बिले बतोरुक्रमविक्रमान्ये
न शृण्वत: कर्णपुटे नरस्य।
एवम् ऋते जन्मन: न साफल्यम्।

तथा हि–

यत्कृष्णप्रणिपातधूलिधवलं तद्वर्ष्म शश्वच्छुभम्
ते नेत्रे तपसार्जिते सुरुचिरे याभ्यां हरिर्दृश्यते।
सा बुद्धिर्विमलेन्दुकुन्दधवला या माधवव्यापिनी
सा जिह्वाऽमृतवर्षिणी प्रतिदिनं या स्तौति नारायणम्।।

एतत्किमपि न जातं, तापत्रयात् कथं सुखी स्याम्।।६।।

वनं हि वृन्दावनमेव धन्यं
यदङ्कितं ते चरणैः सुरम्यैः।।
नाहं गतस्तत्र मुमुक्षुवन्द्यं
सुखी कथं स्यां करुणानिधेऽहम्।।७।।

भावार्थ –हे करुणानिधान! आपके चरणचिह्नों से शोभित, सुन्दर तथा मोक्ष की इच्छा रखने वालों के द्वारा वन्दनीय वृन्दावन ही वस्तुतः श्रेष्ठ वन है, वहाँ भी मैं नहीं गया। मैं तब किस प्रकार (तापत्रय से) सुखी हो सकता हूँ।

व्याख्या– वनं हि वृदावनमिति।। हे करुणानिधे! वनान्यनेकानि सन्ति तेषां मध्ये वृन्दावनं नाम यद्वनं तद्धन्यं सत्यलोकादपि महत्तरम्। सत्यलोके ब्रह्मणो ज्ञानमखण्डितं वृन्दावने द्रुहिणस्यापि मोहः। श्रीकृष्णस्य महात्म्यं दृष्टुमागतो ब्रह्मा बालकान् वत्सांश्चाहतवान् श्रीकृष्णेन तावन्त एव बाला वत्साश्च कृताः। ब्रह्मा स्वयमेव विमोहितो मया एते हता एते वा इति ज्ञातुं न समर्थः। तस्माद् ब्रह्मलोकादपि वृन्दावनं गरिष्ठम्। कथम्भूतं वृन्दावनम् ? ते चरणैरङ्कितं शोभितम्। कथम्भूतैश्चरणैः ? सुरम्यैः सुन्दरैः। पुनः कथम्भूतं वृन्दावनम् ? मुमुक्षुवन्द्यम्। सनकादिभिर्नमस्कृतम्। तत्र पद्भ्यां न गतोऽहम्। धिक् चरणौ। तथाहि वृन्दारण्ये चर चरण! दृक्! पश्य वृन्दावनश्रीः। जिह्वे! वृन्दावनगुणगणान् कीर्त्तय। श्रोत्र! गृह्य वृन्दादेव्याः परिमलम्। घ्राणगात्र! त्वमस्मिन् वृन्दारण्ये लुठ पुलकितं कृष्णकेलिस्थलीषु।

न सत्याख्ये लोके स्पृहयति मनो मे ब्रह्मपदवीम्
न वैकुण्ठे विष्णोरपि मृगयते पार्षत्तनुम्।
अपि श्रीमद्वृन्दावनसरसभावोत्सवतां
निवासैर्धन्यानां सुबहु क्रिमिजन्मापि मनुते।।

तच्छास्त्रं मम कर्णमूलमपि न स्वप्नेऽपि पायादहो
श्रीवृन्दाविपिनस्य यत्र महिमा नात्यद्भुतः श्रूयते।
तं मे दृष्टिपथं न यान्तु नितरां सम्भाष्यतामाप्नुयुः
यें वृन्दावनवैभवे श्रुतिगते फुल्लासिनो नो खलाः।।

ये वृन्दावनवासनिन्दनरता ये वा न वृन्दावनम्
श्लाघन्ते कुधियः ..... केनापि वृन्दावनम्।
ये वृन्दावनमत्रनित्यसुखचिद्रूपं सहन्ते न वा
तैः पापिष्टनराधमैर्न भवतु स्वप्नेऽपि मे संगतिः।

वृन्दावनं न गतः कथं तापत्रयात् सुखी स्याम्।।७।।

यन्नाम गृह्णन् कलुषान्तरात्मा
पुनाति चात्मानमशेषबान्धवान्।।
जिह्वाऽसती मे विमुखी च नाम्नः
सुखी कथं स्यां करुणानिधेऽहम्।।८।।

भावार्थ –हे करुणानिधान! जिनके (भगवान् के) नाम ग्रहण से कलुषित अन्तरात्मा (महापापी) व्यक्ति भी स्वयं को तथा समस्त बन्धु-बान्धवों को भी पवित्र करता है। और (यह जान कर भी) मेरी दुष्ट जिह्वा आपके नाम स्मरण से विमुख है। तब मैं (यह जीव) किस प्रकार तापत्रय से सुखी हो सकता है।

यन्नाम गृह्णन्निति। हे करुणानिधे! यन्नाम यस्य तव नाम गृह्णन् कलुषान्तरात्मा महापातकी ब्रह्महा स्वर्णस्तेयी सुरापी मातृगामी तत्संसर्गी एते महापातकिनो। एतेषां मध्ये यः कश्चित्तव नाम गृह्णाति सोऽप्यात्मानं पुनाति पवित्रयति चकारादशेषबांधवानपि। मम जिह्वाऽसती दुष्टा स्वादलम्पटा। कुतः यतस्तव नाम्नो विमुखी स्वकीयं प्रभुं नारायणं

विहाय असद्वाक्यं गृणीते। रसने! मया वारं वारं तव प्रियं कृतं षड्रसादिभिस्त्वं मयि निर्दया। यथा पुंश्चली योषित् स्वकीयं पतिं परित्यज्य जारं सेवते तस्याः सुखं नेहामुत्र च। हे जिह्वे! मयि निस्स्नेहे हरिं किं त्वं न भाषसे। *हरीति वद कल्यणि संसारार्णवनौर्हरिः*। तथाहि महाभारते–

मदमात्सर्यसंयुक्तः स्वधर्मपरिवर्जितः।

स पूतः सर्वपापेभ्यो नाममात्रैकजल्पकः।।

तथाहि भागवते–

अहो बत श्वपचोऽतोगरीयान्

यज्जिह्वाग्रे वर्त्तते नाम तुभ्यम्।

तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या

ब्रह्मानूचुर्न्नाम गृणन्ति ये ते।।

तथा च विज्ञप्तिशतके–

प्रत्यदिं प्रति चत्वरे प्रत्यङ्गणं प्रत्यहं ये

तावत्तव नामकीर्तनपरास्तेभ्यो नरेभ्यो नमः।

अस्माकं तु दिने दिने नवनवव्यापारमग्नात्मनाम्

एतत्सार्थकमेव जन्म भगवन् जायेत तत् साध्यताम्।।

तथा च ब्रह्मपुराणे–

नामैव परमं पुण्यं नामैव परमं धनम्।

नामैव परमं ज्ञानं नामैव परमं तपः।

नामयुक्तः प्रियोऽस्माकं नामयुक्तो भवार्जुन।।

मम जिह्वा नाम्नो विमुखी कथं तापत्रयात् सुखी स्याम्।।८।।

यन्निसृतं ते चरणाम्बुजाज्जलं
पुनाति विश्वं त्रिदिवं रसातलम्।
तस्मिन् कृतो नैव मयाभिषेकः
सुखी कथं स्यां करुणानिधेऽहम्।।९।।

भावार्थ –हे करुणानिधि ! (परमात्मा) आपके चरणकमलों से निकला जो जल (गङ्गा जी) विश्व को, स्वर्ग को और रसातल को (पाताल लोक को) पवित्र करता है, मेरे द्वारा उसमें स्नान नहीं किया गया। तब मैं किस प्रकार तापत्रय से सुखी हो सकता हूँ।

व्याख्या– यन्निःसृतमिति। हे करुणानिधे! तव चरणारविन्दाद् यज्जलं निःसृतं तत् किं जलम्? गङ्गा। इदमद्भुतम् अम्बुजमम्बुना जातं न क्वचिज्जातमम्बुजादम्बु। मधुहनि तद्विपरीतं चरणसरोजे महानदी जाता सा गङ्गा विश्वं पुनाति, रसातलं पवित्रयति, दिवं स्वर्गं पवित्रयति। तस्मिन् वारिणि मयाऽभिषेको न कृतः न स्नातः। यज्जलस्पर्शेन महापातकिनः पूता भवन्ति, यस्यां स्नानार्थं पावनार्थं वा गच्छतः पुंसः पदे पदेऽश्वमेधराजसूयादीनां फलं न दुर्लभमिति ब्रह्मलोकगतं त्रिविक्रमचरणं ब्रह्मा स्वसुतं धर्मं द्रवीकृत्य प्रक्षालितवान् धर्मद्रवो ह्यपां बीजं वैकुण्ठचरणच्युतं धृतं शुद्धं महेशेन तेन गङ्गाऽमलं जलम् । विषयासक्तचित्तोऽहं गृहं त्यक्तुमसमर्थः। अज्ञोऽहं किं विचार्यते अर्थानां व्ययो भविष्यति आत्मनः शुभं न चिन्तितम्। तथाहि महाभारते–

शक्तस्य पण्डितस्यापि गुणिनो दानशीलिनः।
गङ्गास्नानविहितस्य तस्य जन्मनिरर्थकम् ।।

गङ्गास्नानफलं यच्च गङ्गायामेव लभ्यते।
यथा द्राक्षाफलस्वादो द्राक्षायामेव नान्यतः।।

स्वार्थं न कृतं मया। कस्य सुतादय:
एक: प्रसूयते जन्तुरेक एव प्रलीयते ।
एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतमक एव च दु:कृतम्।।
अहमेको न मे कश्चिन्नाहमन्यस्य कस्यचित्।
न तं पश्यामि यस्याहं न तं पश्यामि यो मम।।
तस्मादहं विज्ञापयामि
दीनानाथे विविधविपदामाश्रये मय्युदासे
सेवाचौरे परमकृपणे नीचनीचानुसारे ।
वारं वारं रचयति गिरं दीनदीनामिदानीम्
विश्वाधीश प्रकटय कृपां नावलम्ब्यो विलम्ब:।।

तव चरणारविन्दाद् यज्जलं जातं तस्मिन् जले न स्नात: कथं तापत्रयात् सुखी स्याम्।।९।।

अतीव दौरात्म्यमिदं मदीयं
न वर्णितो यद्भवत: स्वरूप:।
चतुर्भुज: श्यामघनावदात:
खगाधिरूढ: कृतभक्तपक्ष:।।१०।।

पीताम्बर: कौस्तुभकुण्डलाभ्याम्
विराजमानो मदनोऽभिराम:।
अम्भोरुहाक्ष: कृतगोपवेष:
सुखी कथं स्यां करुणानिधेऽहम्।।११।।

भावार्थ – हे करुणानिधान! मेरी अत्यन्त दुर्जनता को देखो मेरे द्वारा आपके चतुर्भुज, नवीन मेघ के समान (श्याम वर्ण) गरुड़ासीन, भक्तवत्सल, पीताम्बरधारी, कौस्तुभ तथा कुण्डल से शोभायमान,

कमलनयन, गोपवेषधारी, काम को भी मोहित करने वाले स्वरूप का वर्णन नहीं किया गया। तब मैं किस प्रकार तापत्रय से सुखी हो सकता हूँ।

व्याख्या– अतीवदौरात्म्यमिति। हे करुणानिधे! मे अतीव दौरात्म्यं पश्य यद्भवतः स्वरूपो न वर्णितः तद्वर्णनेन शुकादयो मुक्ताः। तव गुणकर्माणि को वर्णयेत्। कालेन महता कोऽपि मत्वा मेधावी गणेशः रजांसि गणयेदपि भवतो गुणांस्तु नैव गणयेत्। भक्तिस्ते मामुत्कण्ठयति किंस्वरूपश्चतुर्भुजः? पुनः कथम्भूतः स्वरूपः? श्यामघनावदातः नवीनमेघसदृशः। पुनः खगाधिरूढः गरुडासनः पुनः कृतभक्तपक्षः। कृतो भक्तपक्षो येन सः। तथाहि–

भक्ताभिमानपरिरक्षणबद्धकक्षे भक्तेप्सितार्थपरिपूर्णककल्पवृक्षे।
कंसादिदुष्टजननिग्रहकर्मदक्षे कृष्णे मतिर्भवतु मे नवनीरजाक्षे।।

पुनः पीताम्बरः। पुनः कौस्तुभकुण्डलाभ्यां शोभमानः। पुनः अम्भोरुहाक्षः। अम्भोरुहं कमलं तद्वदक्षिणी यस्य सः। पुनः कृतगोपवेषः। कृतगोपवेषो येन सः। पुनः मदनाभिरामः। कामस्यापि मोहकः। तत्स्वरूपं ते न वर्णितं यद्वर्णनेन मुक्तः स्याम्। यदि भक्तिस्त्वयि भवति तदावर्णने रुचिः स्यात्। चीर्णप्रायश्चित्तोऽहमात्मानं बहु मन्ये। तथा च महाभारते–

प्रायश्चित्तानि चीर्णानि नारायणपराङ्मुखम्।
न निष्पुनन्ति राजेन्द्र सुराभाण्डमिवापगाः।।

भक्तिः स्वल्पाऽपि पुनाति सा भक्तिस्त्वयि न, कथं तापत्रयात् सुखी स्याम् ।।११।।

योषिन्मुखं चन्द्रमुखेन तुल्यं
स्तनौ च पीनौ नयनं विशालम्।

मध्ये दरिद्रं च गुरुर्न्नितम्ब:
सुखी कथं स्यां करुणानिधेऽहम्।।१२।।

भावार्थ– आपके स्वरूप का ध्यान त्याग कर मैं स्त्री का मुख चन्द्र के समान है, उसके स्तन स्थूल हैं, उसके नयन विशाल हैं, उसका कटिप्रदेश पतला तथा उसके नितम्ब स्थूल हैं इस प्रकार वर्णन में संलग्न हूँ। ऐसी स्थिति में हे करुणानिधान! मैं सुखी कैसे हो सकता हूँ।

व्याख्या– योषिन्मुखमिति। हे करुणानिधे! त्वत्स्वरूपं विहाय किं वर्णितं योषिन्मुखेन तुल्यम्। तथाहि

मुखेन्दौ तव सत्यस्मिन्नितरेण किमिन्दुना।
तवास्यशरणं जातो मन्ये दर्शभयाच्छशी।।
दिवापि न त्यजेत्तत्त्रस्तश्चण्डमरीचित:।

तथाहि

अनुच्छिष्टो देवैरपरिदलितो राहुदशनै:
कलङ्केनास्पृष्टो न नखपरिभूतो दिनकृता।
कुहूभिर्न्निष्णुप्तो न च युवतिवक्रेण विजित:
कलानाथ: कोऽबं कनकलतिकायामुदयति।।

अहर्न्निशं युवत्या वर्णने मनसो रुचि:। यदि ब्रह्मचर्यं स्यां तदा संसारे विरुचिर्भवति। तदुक्तम्

स्मरणं कीर्त्तनं केलि: प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्
संकल्पो व्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च।।
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिण:।

क्व चन्द्र: सुधामय: क्व योषिन्मुखं श्लेष्मागारम्। स्तनौ पीनौ कनककण्टकसदृशौ। क्व कनकं त्वन्मूर्तिर्द्धातूनामस्ति काञ्चनम्, क्व

स्तनौ मांसग्रन्थी। नयनं विशालं कमलपत्रसदृशम्। क्व कमलं लक्ष्म्यालयं ब्रह्मणः प्रसूतिस्थानम्, क्व नयनं वसायाः कलुषम्। मध्ये दरिद्रकृशम्। क्व कृशं तपस्विनः शरीरम्। क्व वनिताकटिः सूक्ष्ममांसास्थिमयी। गुरुर्नितम्बः। क्व गुरुर्गरिष्ठः पूज्यः, कामिनीनितम्बः कटेरधोमांसलः। एवं योषिदङ्गं वर्णितं त्वत्स्वरूपं विहाय कथं तापत्रयात् सुखी स्याम्।।१२।।

अहं ममायं भवनं मदीयम्
त्वदीयभक्ते न हि सौहृदं मे।
स्वप्ने स्मृतं ते न पदारविन्दं
सुखी कथं स्यां करुणानिधेऽहम्।।१३।।

भावार्थ – हे करुणानिधान! अहंकार युक्त मेरे द्वारा यह मेरा पुत्र आदि है, यह मेरा भवन आदि है। यह गृह ,पुत्र, धन, पत्नी मेरे ही हैं। इस प्रकार विचार करते हुए आपकी भक्ति में स्नेह नहीं हुआ। आपके चरणकमलों का स्वप्न में भी स्मरण नही किया। तब किस प्रक़ार तापत्रय से सुखी हो सकता हूँ।

व्याख्या- अहमिति। हे करुणानिधे! त्वन्मायया मोहितस्त्वां न वेद्मि।। अहमिति गर्वः मत्समः कोऽपि न विद्यते। अपरे वराकाः। ममाऽयं सुतः सुन्दरः प्रवक्ता चोद्यमपरः पण्डितो धनवानिति। अयं मदीयो गजः कस्यापि राज्ञो नेतादृशः। अयमश्वः सैन्धवः। इयं ललना वल्लभा इदं वेश्म चित्रितम्। इदं सुवर्णरजतादिकम्। अत्रैवाहर्निशं मनसोऽभिलाषः।

तथाहि गीतायाम्–

ईहन्ते कामभौगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान्।
इदमद्य मया लब्धमिदं प्राप्स्ये मनोरथम्।।

इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्द्धनम्।
असौ मया हतः शत्रून् हनिष्ये चापरानपि।।

ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान् सुखी।
आढ्योऽभिजनवानस्मि कोन्योऽस्ति सदृशो मया।।

प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ।

ममाज्ञानमेतत्। तथाहि महाभारते–

कस्य पुत्राः प्रिया भार्याः कस्य स्वजनबान्धवाः।
कः कस्य नास्ति संसारे निःसंबन्धे न संशयः।।

इदं गृहमिदं पुत्रो द्रव्यं भार्या ममैव हि।

अनित्यं दृश्यते सर्वं संसारस्य हि बन्धनम्।।

धनं शरीरं स्वजनं हि जीवितम्
प्रियाणि मित्राणि शरीरसम्पदः।
चिरायु यः पश्यति मूढचेतनो
न तत्समः कश्चिदस्त्यचेतनः।।

मृत्युः शरीरगोप्तारं वसुरक्षं वसुन्धरा।
दुश्चारिणीव हसति स्वपतिं पुत्रवत्सला।।

त्वदीयभक्ते स्नेहो न। तथा च ब्रह्मपुराणे–

नयति समतां पार्थ मद्भक्तानां कदाचन।
किं पुनर्देवता भक्ता यदि शक्रः स्वयं भवेत्।।

त्वत्पादाम्बुजं स्वप्नेऽपि स्मृतं भवति तर्हि सर्वं वैगुण्यं विलीयते। स्वप्नेऽपि न ध्यातं कथं तापत्रयात् सुखी स्याम् ।।१३।।

न कीर्तितं ते गुणकर्म सादरम्
नो वा श्रुतं ते चरितामृतं मया।

ध्यानं कृतं ते न पदारविन्दयोः
सुखी कथं स्यां करुणानिधेऽहम्।।१४।।

भावार्थ – हे करुणानिधान! मेरे द्वारा आपके गुणों और कर्म का आदर सहित कीर्तन नहीं किया गया और आपके चरित रूपी कथामृत का श्रवण नहीं किया गया, न ही आपके चरणकमलों का ध्यान किया गया। तब किस मैं प्रकार सुखी हो सकता हूँ।

व्याख्या– न कीर्तितमिति। हे करुणानिधे!

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।

नवधा भक्तिस्तासां मध्ये मया एकाऽपि नो कारिता, गुणकर्मादिकं न वर्णितम्। सुदामाख्यरङ्को दरिद्रो यो भक्तस्तस्यार्थे भूमा वा नीता इन्द्रस्य संपत्तिः। सान्दीपनस्यात्मजो यमसदनादानीतः। दावानलाद् दन्दह्यमानं व्रजवासिनमरक्षत्। कालीयविषदूषितजलपानाद् मृतान् गोपानजीवयत्। गिरिवरोद्धरणेन गोकुलमरक्षत्। एतद्गुणादिकं न निगदितम्। तथाहि भागवते–

तव कथामृतं तप्तजीवनम्
कविभिरीडितं कल्मषापहम्।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततम्
भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः।।

जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयम्,
चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम्।
कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदापि
तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णुकृत्यान्।

तव चरणकमलयोर्ध्यानं न कृतम्। तथाहि भागवते–

सकृन्मनः कृष्णपदारविन्दयो
र्निवेशितं तद्गुणरागि यैरिह
न ते यमं पाशभृतश्च तद्भटान्
स्वप्नेऽपि पश्यन्ति हि चीर्णनिष्कृता।।

तव कथाऽमृतं न श्रुतं न गुणकर्मादिकं कथितं न चरणयोर्ध्यानं कृतम्। तव भजनेनैव संसारनिवृत्तिः स्यात्तद्भजनं न जातं। तथाहि गीतायाम्–

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग् व्यवसितो हि सः।
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणस्यति।।

स्वल्पापि भक्तिः त्वयि न। कथं तापत्रयात् सुखी स्याम् ।।१४।।

बाल्यं गतं बालकलीलया च
यौवनं युवतिसेवया गतम्।
वार्द्धकं व्याधिशतैश्च पीडितं
सुखी कथं स्यां करुणानिधेऽहम्।।१५।।

भावार्थ –हे करुणानिधान! बाल्यकाल बालक्रीडा में व्यतीत हो गया और युवावस्था युवतियों की सेवा में (भोग में) बीत गयी और बुढ़ापा सैकड़ों बीमारियों से पीड़ित व्यतीत हो रहा है। तब मैं किस प्रकार सुखी रह सकता हूँ।

व्याख्या– बाल्यं गतमिति। हे करुणानिधे! गर्भेऽतीव दुःखमनुभूतं तत्र बहूनां जन्मनां ज्ञानमभूद्यदि गर्भान्मुक्तः स्यां तदा नारायणमनुचिन्तयामि यथा भूयो गर्भागारे न प्रविशामि। प्राजापत्येन वायुना प्रेरितो

योनियन्त्राद्धरण्यां पतित:। भूमिस्पर्शेन विस्मृतमुदरज्ञानं बाल्ये भगवद्भजनं न जातं, किंतु बाल्ये कर्त्तव्यमेव।

कौमार आचरेत् प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह।
दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम्।

तथाहि महाभारते–

रात्र्यां रात्र्यां व्यतीतायामायुरल्पतरं भवेत्।
गाधोदके यथामश्यो धृतिं विन्देत कस्तदा।

प्रतिक्षणमयं कालक्षयमाने न लक्ष्यते।
बाल्य एव चरेद्धर्ममनित्यं खलु जीवितम्।
फलानामिव पक्वानां शश्वत्पतनतोभयम् ।।

स्व: कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे वाऽपराह्णके।
न हि प्रतीक्षा ते मृत्यु: कृतं वा स्यान्न वा कृतम्।

बाल्यं गतं बालकक्रीडया नाना कौतुकेन। भवतु तारुण्ये भगवद्भजनं करिष्यामि। यौवनं युवतिसेवया गतं कामिनीभोगेन असत्सद्व्यापारेणोपार्जितेनाभरणांशुकान्नपान्नैर्दयिताया मनोरञ्जितम्। तस्या: शासनं नो लम्बितमवदिष्यति सुरसं न दास्यतीति भयेन यथा यथा नर्तयति तथा नृत्यति कामुक:। एवं यौवनं गतं पञ्चेन्द्रियभूतैर्न्नागैर्दृष्टो नष्टो विवेक:। भवतु वार्द्धके सकलविषयभोगान् विहाय गोविन्दे अव्यभिचारणी भक्तिर्विधेया। वार्द्धिकं व्याधिशतैश्च पीडितं कफवातपित्तैर्जर्जरीकृतं तदानीं तव भजनं न जातमिदानीं कथं जायते। वह्निदीपिते भवने कथं कूपखननं भवति। भक्तिविहीन: कथं तापत्रयात् सुखी स्याम्।।१५।।

जीवेषु सर्वेषु कृता न दृष्टि:
समीहिभूता जडता ममैव।।

एको हि विष्णुर्बहुरूपधारी
सुखी कथं स्यां करुणानिधेऽहम्।।१६।।

भावार्थ –हे करुणानिधान! मैने अज्ञानता के कारण सभी जीवों में समान दृष्टि (परमेश्वर को देखने की दृष्टि) नहीं की। एकमात्र विष्णु ही बहुत से रूपों को धारण करते हैं। इस प्रकार सभी जीवों में भगवद्भाव न किया, तब मैं किस प्रकार सुखी हो सकता हूँ।

व्याख्या- जीवेष्विति। हे करुणानिधे! चतुरशीतिलक्षणा योनयो निर्मिताः पुरा। तेषु सर्वेषु जीवेषु समीभूता दृष्टिर्न कृता। परमेश्वरतुल्या दृष्टिर्न्न जाता। तथा च सर्वं विष्णुमयं जगत् नानात्वं मृषा कल्पना। तथाहि गीतायाम्–

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।।
इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।

इयं ममैव जडता अज्ञानता कुतः। एको हि विष्णुर्बहुरूपधारी। वेवेष्टि व्याप्नोति विश्वमिति विष्णुः। ईश्वरस्त्वेक एव नाना शरीरं प्रविश्य ईहां करोति। विना भगवन्तं कथमपि कथं व्रजति सर्वाणि तत्त्वानि मिलित्वा विराजमुत्थापयितुं न शक्तानि यदा विष्णुः प्रविष्टस्तदा विराडुत्थितः। तथा च गीतायाम् – '*पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान्*'। यथा कनकमेकं नाना भूषणं कृतं भूषणे नष्टे कनकमेव सत्यं तथा कलेवरे नष्टे ब्रह्मैव सत्यम्। तथा च योगवासिष्ठे–

घटादिषु प्रनष्टेषु यथाकाशमखण्डितम्।
तथा देहेषु नष्टेषु देही नित्यमलेपकः।।

हृदयाकाशमात्रस्य विनाशे देहनाशनः।
सर्वभूतानि शोचन्ति नष्ट आत्मेति शङ्कया।।

गजो मृतो नत्वीश्वरो मृत इति निगद्यते। यथा कङ्कणं भग्नं न तु सुवर्णं भग्नं कथ्यते। तथा च गीतायाम् –

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति।।
य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानातो नायं हन्ति न हन्यते।।

सर्वेषु जीवेषु विष्णुबुद्धिर्न कृता कथं तापत्रयात् सुखी स्याम् ।।१६।।

भ्रमन् भ्रमन् योनिचराचरेषु
भक्तिर्न जाता तव पादपद्मे।।
उपोषिता नैव तिथिः प्रिया ते
सुखी कथं स्यां करुणानिधेऽहम्।।१७।।

भावार्थ – हे करुणानिधान! जड़ और चेतन नाना योनियों में भटकते-भटकते भी आपके चरणकमल में भक्ति नहीं उत्पन्न हुई। आपकी प्रिय एकादशी तिथि को उपवास नहीं किया, तब मैं किस प्रकार सुखी रह सकता हूँ।

व्याख्या- भ्रमन्भ्रमन्निति। हे करुणानिधे! नाना योनिषु मृगपक्षिवराहोष्ट्राश्वादिष्वचरेषु वृक्षादिषु जन्म भूतम्, तव चरणारविन्दे भक्तिर्न जाता, किन्तु पश्वादिषु विषयज्ञानं शीतोष्णादिकं क्षुत्पिपासा, भजनज्ञानं न स्यात्। तथाहि मार्कण्डेयपुराणे-

ज्ञानमस्ति समस्तस्य जन्तोर्विषयगोचरे।
विषयश्च महाभाग यान्ति चैवं पृथक् पृथक्।।

किन्तु कामसुखं शूकरादिष्वपि संभवति, भगवद्भजनं मानुषव्यतिरेके न। केनापि प्राचीनकर्मणा मानुषं जन्म प्राप्तम्। प्रिया तिथिस्ते त्वच्छरीरात्

संभूता त्वत्स्वरूपिण्येकादशी नोपोषिता। तथाहि नारदीयपुराणे–

स्वर्णस्तेयी सुरापी च ब्रह्महा गुरुतल्पगः।
एकामेकादशीं भक्त्या समुपोष्य शुचिर्भवेत्।।

रटन्तीह पुराणानि भूयो भूयो वराननने।
न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं प्राप्ते वै हरिवासरे।।

न शङ्खेन पिबेत्तोयं न खादेत् कूर्मशूकरौ।
एकादश्यां न भोक्तव्यं पक्षयोरुभयोरपि।

ब्रह्महत्यादि पापानि अगम्यागमनानि च।
अन्नमाश्रित्य तिष्ठन्ति प्राप्ते वै हरिवासरे।
नित्यं भक्तिसमायुक्तैर्नरैर्विष्णुपरायणैः।
पक्षे पक्षे च कर्त्तव्यमेकादश्यामुपोषणम्।
य इक्षेद् विष्णुसायुज्यं श्रियं संपत्तिमात्मनः।
एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि।
न करोति नरो मूढो ह्येकादश्यामुपोषणम्।
पच्येत ह्यन्धतामिश्रे यावदादित्यसंप्लवः।

केचिदेवं वदन्ति

नैवेद्यमन्नमेकादश्यां भोक्तव्यं ते तु लोलुपाः।

तथाहि नारदीयपुराणे– *'स्वमांसं स्वपचस्य मांसं वरं नाम्नं नैवेद्यमन्नव्यतिरेके न भोक्तव्यं फलादिकम्।* पयो वा पयसो विकारो वा। शास्त्रे निषिद्धमन्नभोजनमेकादश्यां ये शास्त्रं प्रमाणं न कुर्वन्ति ते वैष्णवा भवन्ति। शास्त्रं तु भगवद्वचनं तदुलङ्घने प्रत्यवायः स्यात्।। तथा च गीतायाम्–

यःशास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्।।

नाना वस्तु निहितं श्रीकृष्णाय स एव महाप्रसादः। ये एवमुपदिशन्ति शिष्यानेकादश्यां नैवेद्यमन्नं भोक्तव्यं तेऽसद्गुरवः।। यथा अन्धैरुपनीयमाना अन्धा पथं न विदुः किंतु गर्त्ते पतन्ति स्वयमेव निष्पथे पतिताः शिष्यानपि पातयन्ति। सा ते प्रिया तिथिर्नोपोषिता कथं तापत्रयात् सुखी स्याम्।।१७।।

धरामरोऽहं स्वजनाभिमानो
विद्याभिमानो हि धनाभिमानः।
त्वद्भक्तिहीनो बहुकर्मनिष्ठः
सुखी कथं स्यां करुणानिधेऽहम्।।१८।।

भावार्थ –मैं स्व बन्धु–बान्धवों का अभिमानी, विद्या का अभिमानी, धन का अभिमानी ब्राह्मण हूँ। बहुत से कर्म (दान, यज्ञ, व्रतादि) को निष्ठापूर्वक करने वाला होने पर भी मैं तुम्हारी भक्ति से हीन हूँ। तब मैं किस प्रकार तापत्रय से सुखी रह सकता हूँ।

धरामरोऽहमिति। हे करुणानिधे! अहं धरामरो ब्राह्मणः षड्कर्मनिरतो याज्ञिकः। कथंभूतोऽहम् ? स्वजनाभिमानः बहुबन्धुयुतः।। पुनः कथम्भूतः ? विद्याभिमानः। पण्डितोऽहं षण्णां शास्त्राणां वक्ता स्मार्त्तः संशयच्छेदकः। पुनः कथम्भूतः ? धनाभिमानः। मत्समः कोऽप्यर्थवान्न विद्यते। तथाहि भागवते–

आत्मजायासुतागारपशुद्रविणबन्धुषु।
निरूढमूलहृदय आत्मानं बहु मन्यते।।

पुनः कथम्भूतोऽहम् ? त्वद्भक्तिहीनः। तथाहि नारदीयपुराणे–

श्वपचोऽपि महीपाल विष्णुभक्तो द्विजाधिकः।
विष्णुभक्तिविहीनश्च यतिश्च श्वपचाधिकः।।

द्वादशगुणयुक्तोऽपि ब्राह्मणः श्रीकृष्णपदारविन्दाद्विमुखः सोऽपि निन्द्यः। उक्तं च–

धर्मश्च सत्यं च दमस्तपश्च अमत्सरोऽह्रीस्तितिक्षानुसूया।
यज्ञश्च दानं च धृतिः श्रुतं च व्रतानि वै द्वादश ब्राह्मणस्य।।

इति। पुनः कथम्भूतोऽहम्। बहुकर्मनिष्ठः। बहुकर्मसु निष्ठा समाप्तिर्यस्य सोऽहम्। स्वर्गकामनया यज्ञमिमं पक्षे व्रतं करिष्ये दानं ददामि। नाना कर्मसु श्रद्धा।। तथाहि महाभारते–

अश्वमेधशतैरिष्ट्वा वाजपेयशतैरपि।
न प्राप्नुवन्ति सुगतिं नारायणपराङ्मुखाः।।

तथाहि भागवते–

धिग्जन्मनस्त्रिवृद्विद्यां धिग्व्रतं धिग्बहुज्ञतां।
धिक्कुलं धिग्क्रियादाक्ष्यं विमुखा ये त्वधोक्षजे।।

भक्तिहीनोऽहं कथं तापत्रयात् सुखी स्याम्।।१८।।

ये नाथ भक्तास्तव भृत्यभृत्याः
ध्यायन्ति ये त्वां पुरुषं पुराणम्।
तेषां रजो नैव धृतं स्वमूर्ध्नि
सुखी कथं स्यां करुणानिधेऽहम्।।१९।।

भावार्थ –हे नाथ! पुराण (जगत् कारण स्वरूप) पुरुष आपका तथा आपके दास के भी दास भक्त का जो दिन रात ध्यान करते हैं, उनकी पाद–धूलि को मस्तक पर धारण नहीं किया। हे करुणानिधान! तब मैं किस प्रकार तापत्रय से सुखी हो सकता हूँ।

***व्याख्या* - ये नाथ भक्ता इति। हे करुणानिधे! ये भक्तास्त्वामहर्निशं ध्यायन्ति तेषां पादरजः स्वमूर्ध्नि न धृतम्, किन्तु भक्तानां पादसेवया मोक्षः। अहमज्ञः। कुतः ? यतो भक्तानां पादरजस्तेन स्नातानां देहिनां सर्वेषामपि तद्ज्ञानं भवति नतूत्तमानामेवेति नियमः।**

तथाहि भागवते– *'जीवच्छवो भागवताङ्घ्रिरेणुं न जातु मर्त्योऽभिलभेत यस्तु अभितो न स्पृशन्न धारयेत्'*। कथम्भूतं त्वाम् ? पुरुषं पुरि शेते पूरयति वा पुरुषः प्रकृतेः परम्। पुनः कथम्भूतं त्वाम् ? पुराणम्। जगतः कारणम् अनादिम्। भक्तानां सेवया विना त्वयि जनः कथं भक्तिं लभते। कथम्भूताः भक्ताः? तव भृत्यभृत्याः तव भक्तस्य दासाः। निर्वैराः गर्वादिरहिताः। शत्रुमित्रयोः समबुद्धयः। भीष्मवाक्यम्– *'तव भृत्यभृत्यभृत्यस्य भृत्यमिति मां स्मरलोकनाथ।'* ये भक्तास्ते भगवद्रूपिणः विष्णुभक्ताः लोकपावनार्थं पर्यटन्ति।

तथा च भागवते–

वसन्ति वैष्णवा यत्र तच्चिन्तास्तत्परायणाः।
तत्र सन्निहितो विष्णुर्नृप तेनात्र संशयः।।

न सुगन्धैर्न्नानुलेपैर्न्न च पुष्पैर्मनोहरैः।
सान्निध्यं कुरुते विष्णुर्यत्र सन्ति न वैष्णवाः।।

स्मृतः संभाषितो वापि पूजितो वा द्विजोत्तमा
पुनाति भगवद्भक्तश्चाण्डालोऽपि यदृच्छया।।

शूद्रं वा भगवद्भक्तं निषादं स्वपचं तथा।
वीक्ष्यते जातिसामान्यं स याति नरकं नरः।।

तस्मादेते महाभागाः वैष्णवा वीतकल्मषाः।
पुनन्ति सकलाल्लोकांस्तीर्थेभ्योऽप्यधिकाः स्मृताः।।

तथाहि ब्रह्मपुराणे–

वैष्णवाल्लभते भक्तिं भक्त्या मां लभते नरः।
वैष्णवान् भज कौन्तेय मा भजस्वान्यदेवताः।।

मद्भक्तो दुर्लभो यस्य स एव मम दुर्लभः।
यो मे भक्तस्य निन्दार्थी न मे भक्तः स पाडव।।

यो मे भक्तस्य प्रेमार्थी स नरः परमो मम।
अस्माकं बान्धवा भक्ताः भक्तानां बान्धवा वयम्।।

भक्ताननने वसेद् ब्रह्मा शिरस्येव वसाम्यहम्।
हृदये शङ्करो देवः पादे गन्धर्वकिन्नराः।।

महात्मनां पादरजसा अभिषेकं यावन्न वृणीत तावत् कृष्णाङ्घ्रिं मतिर्न्न स्पृशति न प्राप्नोति। भक्तानां पादरजो मूर्धनि न धृतं, कथं तापत्रयात् सुखी स्याम् ।।१९।।

विहाय दारान् सुतभृत्यबान्धवान्
प्राप्ता भवन्तं भवबन्धभीताः।
तेषां कृतो नैव प्रियो हि सङ्गः
सुखी कथं स्यां करुणानिधेऽहम्।।२०।।

भावार्थ–हे करुणानिधान! भवबन्धन से भयभीत जो भक्त स्त्री, पुत्र, सेवक और बन्धु को त्याग कर आपको प्राप्त करते हैं। उनके प्रिय संग (सत्संग) को नहीं किया, तब किस प्रकार (तापत्रय) से सुखी हो सकता हूँ।

व्याख्या – विहाय दारानिति। हे करुणानिधे! सत्सङ्गादेव मोक्षः सोऽपि न कृतः। येन भक्ता भवन्तं प्राप्तास्तेषां सङ्गो न कृतः। किं कृत्वा भवन्तं प्राप्ताः सुतदारभृत्यान् विहाय सकलविषयवासनास्त्यक्त्वा। कथम्भूताः भक्ताः भवन्तं प्राप्ताः। मायापाशात् त्रसिताः प्रसूतिनिधनवेदनाऽसहिष्णवः। गृहदारात्मवित्तबन्धुषु सङ्गो मा स्याद्यदि स्याद्भगवत्प्रियेष्वेव। तथाहि च मार्कण्डेयपुराणे–

सङ्गः सर्वात्मना त्याज्यो यदि त्यक्तुं न शक्यते।
सद्भिः सहैव कर्त्तव्यः सन्तः संसारभेषजम्।।

तथाहि भागवते–

तुलयामलवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः।।

तथाहि योगवासिष्ठे–

महानुभावसंसर्गात् संसारार्णवलङ्घने ।
युक्तिः सम्प्राप्यते रामदृढानौरिव नाविकात्।।
संसारदीर्घरोगस्य सुविचारो महौषधम्।
कोऽहं कस्य च संसारो विवेके न विलीयते।।
यस्मिन् देशे मरौ तज्ज्ञो नास्ति सज्जनपादपः।
सफलः शीतलच्छायो न तत्र दिवसं वसेत्।।
सदा सन्तोऽभिगन्तव्या यद्यप्युपदिशन्ति नः।
याहिस्वैरकथास्तेषामुपदेशा भवन्ति ताः।।

ये भगवन्तं प्रपन्नास्ते देवैश्च पवित्रगाथाः। तथा च ब्रह्मपुराणे–

ये केचित् प्राणिनो भक्ता मदर्थे त्यक्तबान्धवाः।
तेषामहं परिक्रीतो नान्यत्क्रीतो जनार्दनः।।
विहाय कामान् परया च भक्त्या भजस्व भक्तान् मम भक्तिशक्तान्।
ममैव बन्धून् परमार्थयुक्तान् सदैव विष्णोर्हृदि संनिविष्टान्।।
तं देशं निष्फलं मन्ये यत्र नास्ति हरिप्रियः।
तं देशं सफलं मन्ये यत्र चास्ति हरेः प्रियः।।

यस्य कुले त्वद्भक्तो जायते त्रिसप्तभिः पितृभिः सह पूतो भवति। यत्र भगवद्भक्तास्तिष्ठन्ति तत्र कीटा अपि पूयन्ते। सत्सङ्गो न कृतः कथं तापत्रयात् सुखी स्याम्।।२०।।

ये ये नराः कामकलासु तज्ज्ञा
स्ते ना विटा ये कुटिलाः सदम्भाः।

तैरेव सार्द्धं महती रुचिर्मे
सुखी कथं स्यां करुणानिधेऽहम्।।२१।।

भावार्थ- हे करुणानिधान! (सत्सङ्ग त्याग कर) जो-जो पुरुष कामकला निपुण, विट (व्यभिचारी) तथा (जो) कुटिल तथा अहंकारी हैं, उनके सङ्ग में ही मेरी अत्यधिक प्रीति है। तब किस प्रकार मैं सुखी हो सकता हूँ।

व्याख्या- ये ये नरा इति। हे करुणानिधे! कस्य दूषणं ददामि आत्मनात्मा वञ्चितोऽस्मि। सत्सङ्गं विहाय एतेषां सङ्गः कृतः। केषाम्? ये ये नराः कामकलासु तज्ज्ञाः कामशास्त्रेषु विदग्धा युवतीनामङ्गेषु कामस्य वसतिं व्याकुर्वन्तः कामिनः संसारस्य द्वारं योषितां सङ्गिनस्तेषां सङ्गः। भक्तसेवाद्वारमाहुर्विमुक्तेरिति। अपरे स्तेनाश्चौराः स्वर्णहारिणः। अन्ये विटा परयोषित्सङ्गिनः व्यभिचारिणः।

न तथास्य भवेन्मोहो बन्धश्चान्यप्रसङ्गतः।
योषित्सङ्गात्तथा पुंसां यथा तत्सङ्गसङ्गिनः।।

अपरे कुटिलाः पिशुनाः छिद्रान्वेषिणः सुहृन्निन्दकाः कृतघ्नाः। अन्ये सदम्भाः धर्मवञ्चकाः एते मत्सखायः। एतैः साकं महती रुचिः प्रीतिः। सत्सङ्गं विहाय एतेषां सङ्गः कृतः। तथा च योगवासिष्ठे-

वरं सरावहस्तस्य चाण्डालागारवीथिषु।
भिक्षार्थमटनं राम न मूर्खसहजीवितम्।
न व्याधिर्न्न विषं राम तथान्यद्वापि भूतले।
दुःखाय स्वशरीरस्य मौर्ख्यमेतद्यथा नृणाम्।।
ज्ञानिनामपि चित्तं तत्केवलं सम्मुखोदयम्।
सत्त्वाः संसारदुखार्त्ताः कं यान्ति शरणं वद।।
तज्ज्ञानं स च शास्त्रार्थस्तद्वैदग्ध्यमखण्डितम्।।

सच्छिष्याय विरक्ताय साधोर्यदुपदिश्यते।।
सर्वशास्त्रे कला जन्तोरनभ्यासेन नश्यति।।
इयं ज्ञानकला रामसक्तजातद्विवर्द्धते।

सत्सङ्गं विहाय एतेषां सङ्गः कृतः।। कथं तापत्रयात् सुखी स्याम्।।२१।।

युगादिमन्वादिषु राहुग्रस्ते
दिवाकरे वै धृतिपुण्ययोगे।।
दत्तं न किंचित्तव तुष्टिहेतोः
सुखी कथं स्यां करुणानिधेऽहम्।।२२।।

भावार्थ- हे करुणानिधान! युगादि एवं मन्वादि काल में, राहु द्वारा सूर्य के ग्रहण (सूर्यग्रहण) काल में तथा धृति आदि सभी पुण्ययोगों में आपकी तुष्टि के लिए कुछ भी दान नहीं किया, तब मैं किस प्रकार तापत्रय से सुखी रह सकता हूँ।

व्याख्या- युगादि मन्वादीति। हे करुणानिधे! एतेषु युगादिषु पुण्यकालेषु किमपि न दत्तं तव तुष्टिहेतोस्तवार्पणं न कृतम्। युगादिमाह

शुक्लतृतीयावैशाखे प्रेतपक्षे त्रयोदशी।
कीर्त्तिके नवमी शुक्ला माघमासे च पूर्णिमा।।

युगान्तमाह

सूर्यस्य सिंहसंक्रान्त्यामन्तः कृतयुगस्य च।
अथ वृश्चिकसंक्रान्त्यामन्तस्त्रेतायुगस्य च।।

ज्ञेयस्तु वृषसंक्रान्त्या द्वापरान्तस्तु संख्यया।
तथा च कुम्भसंक्रान्त्यामन्तः कलियुगस्य तु।।

युगान्तेषु युगान्तेषु दत्तमक्षयकारकम्।
यत्किञ्चित्क्रियते तत्र युगान्तफलभाग् भवेत्।

मन्वादिमाह

अश्वयुक् शुक्लनवमी कार्त्तिके द्वादशीशिता।
तृतीयाचैत्रमासस्य तथा भाद्रपदस्य च।।

आषाढशुक्लनवमीशिता माघस्य सप्तमी।
श्रावणस्याष्टमी कृष्णा तथाषाढी च पूर्णिमा।

फाल्गुनस्य त्वमावास्या पौषस्यैकादशीशिता।
कार्त्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्येष्ठी पञ्चदशीशिता।

एता मन्वादयस्तिथयः।

दत्तं वै धृतियोगे पुण्यं स्यात्तदनन्तकम्।
उपमर्दे लक्षगुणितं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः।।

पुण्यं कोटिगुणं मध्ये मुक्तिकाले त्वनन्तकम्।
चन्द्रसूर्यग्रहे चैव मरणे पुत्रजन्मनि।
मलमासेऽपि देयं स्याद्दत्तमक्षयकारकम्।।

तथाहि पद्मपुराणे–

द्विजानां न कृता प्रीतिर्मन्वादिषु युगादिषु।
व्यतीपाते न दत्तं हि किञ्चिदल्पं महत्यलम्।।

संक्रान्त्यामुपरागे च न दत्तं चन्द्रसूर्ययोः।
सर्वाण्यन्यानि सर्वाणि जग्मुः शून्यानि वै द्विज।

नो दत्तेन विना विप्र किञ्चिदेवोपतिष्ठते।।

एतेषु कालेषु तवार्पणं न कृतं किञ्चित्, कथं तापत्रयात् सुखी स्याम्।।२२।।

मनो मदीयं परिचञ्चलं हरे
भूयोऽनुरागं कुरुते सुतादिषु।।
विहाय निर्वाणपदं भवन्तं
सुखी कथं स्यां करुणानिधेऽहम्।।२३।।

भावार्थ -हे करुणानिधान! अत्यन्त चञ्चल मेरा मन आपके निर्वाणपद को त्यागकर बार-बार पुत्र, स्त्री आदि में ही अनुराग करता है। तब किस प्रकार मैं सुखी रह सकता हूँ।

व्याख्या- मनो मदीयमिति। हे करुणानिधे ! इदम् अतीव चञ्चलं मे मनः वारं वारं सुतकलत्रादिषु अनुरागं प्रीतिं कुरुते। किं कृत्वा ? भवन्तं विहाय। कथम्भूतं भवन्तं निर्वाणपदं मोक्षम्। संसारचक्रे महद्दुःखं तस्मादहं त्रस्तोऽस्मि शोकाग्निना सकलयोनिषु दह्यमानोऽस्मि। दुःखस्यौषधं त्वां न वेद्मि। देहाभिमानेन मुह्यामि। नाना योनिषु क्लिश्यमानस्य मम कारुण्यं कुरु मृगतृष्णावन्मिथ्याभूतं विषयसुखं छिन्धि। तथाहि योगवासिष्ठे-

स्वस्वरूपमजानन् वै जनोऽयं दैवमोहितः।
विषयेऽपि सुखं वेत्ति पश्चात्पाके विषान्नवत्।।
यत्किञ्चिदपि संकल्पान्नरो दुखे निमज्जति।
न किंचिदपि संकल्पात् सुखमव्ययमश्नुते।।

यथा कोशकारी कीटविशेषो मुह्यति निर्गमोपायं न जानाति एवम्भूतं मे मनः। तथाहि महाभारते-

चीरवासा जटी वापि त्रिदण्डो मुण्ड एव च।
वृथा क्लिश्यति स ब्रह्मन् यस्य शान्तं न मानसम्।

विमुञ्चति यदा सर्वान् कामान् यस्तु हृदि स्थितान्।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते।।

इति श्रुतेः। अनेन मनसा मोहसागरे क्षिप्तोऽस्मि।

तथाहि विज्ञप्तिशतके-

नित्यं परस्वनिरते परदारलुब्धे लोकापवादरसिके पुरुषार्थहीने।
नानापराधमलिने मयि नीचनीचे दीने दयालय दयामतुलं विधेहि।।

यस्येतादृशं मनः स कथं तापत्रयात् सुखी स्याम्।।२३।।

शक्नोम्यहं नैव मनो विधर्त्तुं
यतस्ततो गच्छति नित्यमेव।।
करोति कार्यं प्रियमिन्द्रियाणां
सुखी कथं स्यां करुणानिधेऽहम्।।२४।।

भावार्थ- हे करुणानिधान! मन को निग्रह (स्ववश) करने में मैं समर्थ नहीं हूँ। अतः यह स्वेच्छापूर्वक यहाँ-वहाँ (पर-अपवाद, परस्त्री, धन आदि विषयों में) नित्य ही भ्रमण करता है। तथा इन्द्रियों को जो प्रिय कार्य हैं, मैं वही करता हूँ। तब किस प्रकार मैं तापत्रय से सुखी हो सकता हूँ।

व्याख्या- शक्नोऽम्यहमिति। हे करुणानिधे! एवं चेद्वद मनसो निग्रहः कर्त्तव्यः स्ववशे स्थापनीयं मनः येन मनसा दुःखमनुभूयते भवता। सत्यं सम्यगुक्तम्। मनो विधर्त्तुं न शक्यते वायुः धर्त्तुं कः समर्थः। तथाहि गीतायाम् -

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढम्।
तस्याऽहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।।

यतो धर्त्तुं न शक्यते। अतः स्वेच्छया यतस्ततो गच्छति परापवादेषु परयोषित्सु अन्यजायासु अपि। इन्द्रियाणि बलवन्ति संयतस्यापि मनो हरन्ति। तथाहि गीतायाम् – '*इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः*'। तथा चोक्तम् –

रजकश्चर्मकारश्च नटो वरुड एव च।
कैवर्तमेदभिल्लाश्च सप्तैते अन्त्यजा स्मृताः।।

अन्ये सायिनस्तु चाण्डालपुष्कसमातंगादयः । तथाहि

श्रोत्रं चक्षुस्स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते।

तथाहि योगवासिष्ठे–

एक एव मनो देवो जितः सर्वार्थसिद्धिदः ।
अन्यत्र विफलक्लेशः सर्वेषां तज्जयं विना।।
पूर्णे मनसि संपूर्णं सुजगत्सु सुधाद्रवैः।
उपानत् गूढपादस्य नलुर्मार्गास्तृतैव भूः।।
रामस्त्वात्मविचारोऽयं कोऽहं स्यामिति रूपकः।
चित्तदुर्द्दमबीजस्य दहने दहनस्मृतः।।
किमिदं विश्वमखिलं किं स्यामहमिति स्वयम्।
विचारनियतस्यैतदसदेव भवेज्जगत्।।
साधुसङ्गं च सद्वस्तुपरो भवसि राम चेत्।
दिनैः कतिपयैरेव प्राप्नोषि मा परां धियम्।।

पञ्चेद्रियाणि यत् प्रार्थयन्ते तत्सर्वं तेषां प्रियं करोति मनः। तस्मादप्रियेण मनसा कथं संसारः परमः स्यात्।।२४।।

यद् ब्रह्म नित्यं परमं हि धाम
ज्योतिर्गुणातीतमपारमेयम्।।
तल्लब्धये नैव कृतप्रयासः
सुखी कथं स्यां करुणानिधेऽहम्।२५।।

भावार्थ–हे करुणानिधान! जो ब्रह्म परम, ज्योतिस्वरूप, गुणातीत तेजोमय है उसे प्राप्त करने का प्रयास नहीं किया, फिर किस प्रकार मैं तापत्रय से सुखी हो सकता हूँ।

व्याख्या– **यद् ब्रह्मेति**। हे करुणानिधे! यद् ब्रह्म तल्लब्धये प्रयासो न कृतः। प्रयासोऽष्टाङ्गयोगः। यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहार–धारणाध्यानसमाधयः। यममाह–

अहिंसासत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यापरिग्रहः।
अक्रोधश्चानुसूया च प्रोक्ताः संक्षेपतो यमाः।।

नियममाह–

तपः स्वाध्यायसन्तोषः शौचं च हरिपूजनम्।
सन्ध्योपासनमुख्याश्च नियमाः परिकीर्त्तिताः।।

आसनमाह– कुशाजिनचैलनिर्मितं चासनम्। प्राणायामाह–जितश्वासः प्रणवं मनसा स्मरेत् पूरककुम्भकरैचकैः। प्रत्याहारमाह–इन्द्रियाणि विषयेभ्यो मनसा नियच्छेत्। ध्यानमाह– एकमेकं पादाद्यवयवं ध्यायेत्। धारणामाह– मनः कर्मभिः आक्षिप्तं भगवद्रूपे धारयेत्। चित्तस्थिरीभूते मनसि स्फुरत्यन्तमानन्दनमात्रम्। कथम्भूतं ब्रह्म ? नित्यम्। मृत्युशून्यम्। *'विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति'*। पुनः कथम्भूतम्? परमम्। अवतारादेः कारणम्। पुनः कथम्भूतम् ?। ज्योतिः। उपाधिरहिम्। यद्वा ज्योतिष्मतां प्रकाशकम्। पुनः कथम्भूतम् ? गुणातीतम्। सत्त्वादिभिर्व्यतिरिक्तम्। पुनः कथम्भूतम् ? धाम। तेजोमयं प्रकाशकत्वात्।

'*न तत्र सूर्य: प्रतिभाति नाग्निर्न च निशापति:*' इति श्रुते:। तथाहि गीतायाम्-

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्।।

पुन: कथम्भूतं ब्रह्म अपारमेयम् आकाशरूपं आवरणरहितत्वात्। यद्वा ब्रह्म भवामि तदा तापत्रयात् सुखी स्याम्।।२४।।

कामक्रोधमदलोभमोहितो
गुणैरसङ्गं प्रकृते: परं त्वाम्।।
नो वेद्मि नूनं निगमैर्विमृग्यं
सुखी कथं स्यां करुणानिधेऽहम्।।२६।।

भावार्थ – हे करुणानिधान! काम, क्रोध, अहंकार और लोभ से मोहित, गुणों से व्यतिरिक्त मैं प्रकृति (माया) से पर अर्थात् मायारहित, वेदों के द्वारा अन्विष्यमाण आपको नही जानता हूँ। अत: किस प्रकार मैं तापत्रय से सुखी हो सकता हूँ।

व्याख्या- कामक्रोधमदलोभमोहिते इति। हे करुणानिधे! त्वां निश्चितं नो वेद्मि न जानामि कथम्भूतोऽहम्। कामक्रोधमदलोभमोहित:। एतैर्ग्रस्त:। तथाहि महाभारते-

क्रोधश्च दुर्जय: शत्रुर्लोभो व्याधिरनन्तक:।
उत्पद्यते यदा भक्तिर्विष्णुपादाम्बुजाश्रया।।
तदा लोभ: क्षयं याति सा तु पुंसां सुदुर्लभा।

तथाहि गीतायाम् – '*काम: क्रोधस्तथालोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्*'। *तथा चोक्तं भर्तृहरिणा*– '*लोभश्चेदगुणे न किम्*'। उक्तं च –'*लोभमूलानि पापानि*'। त्वयि स्वल्पापि भक्तिर्न कथं लोभादीनां नाश:। तथाहि महाभारते–

यथाग्निः सुसमिद्धोऽर्चिः करोत्येधांसि भस्मसात्।
पापानि भगवगद्भक्तिस्तथा दहति तत्क्षणात्।

कथम्भूतं त्वाम् ? गुणैरसङ्गम्। सत्त्वादिभिर्व्यतिरिक्तम्। पुनः कथम्भूतं त्वाम् ? प्रकृतेः परं प्रकृतिर्माया तस्याः परं भिन्नं मायारहितम्। पुनः कथंभूतम् ? निगमैर्विमृग्यम्। वेदैरन्विष्यमाणं श्रुतयोपि तत्त्वतस्त्वां न विन्दन्ति। क्वाहं कामादिभिर्व्याप्तः। क्व च भगवान् वेदोऽपि तव गुणकर्मादिकं न वेद न जानाति। यर्हि केऽपि न जानन्ति तर्हि किं प्रमाणम्। भक्ता एव त्वां जानन्ति, न त्वभक्ताः। भक्तिविहीनोऽहं कथं त्वां वेद्मि। वैष्णवानां सङ्गतिरपि न कृता। तथाहि पद्मपुराणे–

वैष्णवो यद् गृहे भुङ्क्ते येषां वैष्णवसङ्गतिः।
तेऽपि संपरिहार्यास्तु न ते स्युर्मम गोचराः।।

यमवाक्यमिदम्। परमेश्वरे प्रसन्ने सति भक्तानां सङ्गतिर्भवति। कामादिभिर्युक्तोऽहं कथं तापत्रयात् सुखी स्याम्।।२६।।

पुरेष्वनेकेषु कृतो निवासः
कुत्रापि लेभे न परं सुखं यत्।।
प्राप्तोऽधुनास्मिन्नगरे न जाने
सुखी कथं स्यां करुणानिधेऽहम्।।२७।।

भावार्थ–हे करुणानिधान! अनेक पुरों में (नाना शरीरो में) निवास किया (जन्म लिया) परन्तु कहीं भी (किसी भी योनि में) परम सुख प्राप्त नहीं हुआ। अब इस नगर में अर्थात् मनुष्य योनि को प्राप्त कर भी जो आपको न जाना (आपकी भक्ति न की) तब मैं किस प्रकार सुखी हो सकता हूँ।

व्याख्या– पुरेष्विति। हे करुणानिधे! पुरेषु नाना शरीरेषु निवासो जातस्तेषु शरीरेषु विषयगोचरं ज्ञानमभूद्यत्परमसुखं ब्रह्मानन्दमयं तन्न लेभे

न प्राप्तवानस्मि। तत्सुखं सत्सङ्गादेव भवति। सत्सङ्गाद् हरिकथाश्रवणं श्रवणाद्भक्ति: भक्तौ सञ्जातायां तव चरणारविन्दे मनो लीनं भवति। तदा ब्रह्मानन्दमयं सुखं जायते। तिर्यग्योनिषु सत्सङ्गाभाव:। दैवात् प्राचीनकर्मवशादस्मिन्नगरे नगरजन्मनि निवासो जातोऽधुना। सर्वेभ्यो नगरेभ्यो सुन्दरे तत्रापि नश्वरे शरीरे विषयासक्तचित्तोऽहं त्वां न जाने यस्त्वां न वेद स यथा तत्पुरवासी पशुस्तथा। इदं नगरं दुर्लभं प्राप्तं तदपि गतम्। तथा गरुडपुराणे–

नि:सीमजन्मशतकोटिषु मानुषत्वम्।
तत्रापि दुर्लभतरं खलु भो द्विजत्वम्।।

यस्तं न पालयति लालयतीन्द्रियाणि।
प्राप्तेऽमृतं त्यजति हस्तगतं प्रमादात्।।

त्वन्मायया मोहितस्त्वां न जाने। यस्य मायया ऋषयो देवा मोहितास्तत्र कोऽहं वराक:। यदि केऽपि न विदन्ति तर्हि कथं मुच्येरन्। त्वत्क्षपयैवेत्याह। तथाहि भागवते–

स्वयम्भूर्नारद: शम्भु: कुमार: कपिलो मुनि:
प्रह्लादो जनको भीष्मो बलिर्वैयासिकिर्वयम् ।
द्वादशैते विजानीमो धर्मं भागवतं भटा:।

तथाहि द्वितीयस्कन्धे–

वेदाहमङ्ग परमस्य हि योगमायाम्
यूयं भवश्च भगवानथ दैत्यवर्य:।
पत्नी मनो: स च मनुश्च तदात्मजाश्च
प्राचीनबर्हिर्ऋभुरङ्ग उत ध्रुवश्च।।
इक्ष्वाकुरैलमुचुकुन्दविदेहगाधि
रघ्वम्बरीषसगरा गयनाहुषाद्या:।

मान्धात्रलर्कशतधन्वनुरन्तिदेवा
देवव्रतो बलिरमूर्तिरयो दिलीप:।।
सौभर्युतङ्कशिविदेवलपिप्पलाद्या:
सारस्वतोद्धवपराशरभूरिषेणा:।
येऽन्ये विभीषणहनुमदुपेन्द्रदत्त
पार्थाष्टिषेणविदुरश्रुतदैववर्या:।।
ते वै विदन्त्यतितरन्ति च देवमायाम्
स्त्रीशूद्रहूणशबरा अपि पापजीवा:।
शुद्ध्यन्ति यदुपाश्रयाश्रया:
त्वामहं न जाने कथं तापत्रयात् सुखी स्याम्।।२७।।

अर्थेहया कष्टमतीव मे कृतम्
विहाय मानं कुलजातिसत्क्रियाम्।
तेषां व्ययो नैव कृतस्त्वदर्थे
सुखी कथं स्यां करुणानिधेऽहम्।।२८।।

हे करुणानिधान! अर्थोपार्जन के लिए मेरे द्वारा मान, कुल और जाति की मर्यादा का (सदाचार) त्याग कर अत्यन्त कष्ट उठाया गया। उस धन को मेरे द्वारा तुम्हारे लिए (दान में) व्यय नहीं किया गया। तब किस प्रकार मैं सुखी हो सकता हूँ।

व्याख्या- अर्थेहया कष्टमिति। हे करुणानिधे! अर्थोपार्जने मयाऽतीवकष्टं कृतं सरिद्गिरित्वं घनं द्वीपान्तरगमनं कृषिव्यापारादिकं क्रयविक्रयं युद्धे शस्त्रसंपात: क्षुत्पिपासाशीतोष्णवातवर्षाम्बुपीडितेन। किं कृत्वा ? कुलजातिसत्क्रियां विहाय। जातिधर्मं मानमादरं सत्क्रियां सदाचारं परित्यज्य। तथा चोक्तम् -

पतन्ति खड्गधारासु विशन्ति मकरालयम्।
किन्न कुर्वन्ति सुभगे कष्टमर्थार्थिनो नरा:।।

प्राणेभ्यो न प्रियं वस्तु जगतीत्यनृतं खलु।
लक्ष्मीकृतयत: प्राणान् गणयन्ति तृणं नरा:।।

तद् द्रव्यं त्वदर्थे व्ययो निकृतं कृष्णार्पणम्। स्कन्दपुराणे– 'तद्धनं धनिनां श्रेष्ठं यत्त्वदर्थे व्ययं कृतम्'। तथाहि महाभारते–

अस्थिराणि शरीराणि विभवो नैव शाश्वत:।
नित्यं संनिहितो मृत्यु: कर्त्तव्यो धर्मसंग्रह:।।

त्वयि निवेदितमन्नमपि भूसुराणामास्ये न हुतं न वैष्णवानां येन हवनेन तव तोषो भवति आत्मा जीवोऽपि परमेश्वर:। सोऽपि न परितोषित:, किन्तु दत्तं मुक्तफलं धनम्।

अदत्वा म्रियते यस्तु ततोऽधिकतरं नु किम्।
बोधयन्ति न याचन्ते भिक्षाचारा गृहे गृहे।।

दीयतां दीयतां नित्यमदातु: फलमीदृशम्।
अक्षरद्वयमाभ्यस्तं नास्ति नास्तीति यत्पुरा।।

तदिह देहि देहीति विपरीतमुपस्थितम्।
अतिक्लेशेन लब्धस्य प्रकृत्या चञ्चलस्य च।।
गतिरेकैव वित्तस्य दानमन्या विपत्तय:।

तथाहि विज्ञप्तिशतके–

नाकारि किञ्चिदपि चेदधुना तदाद्य
स्वो वा कथञ्चिदपि पुण्यमहं करिष्ये।
इत्याशयैव यदुनन्दनमामकीन:
काल: प्रयाति विफल: सकलोऽपि तावत्।।

उत्पतन्तं नभस्वन्तं निपतन्तं रसातलम्।
पर्यटन्तं पृथिव्यां तं नाहन्तमुपतिष्ठति।।

कन्दर्पो हि

आत्मानं धर्मकृत्यं च पुत्रदारांश्च पीडयेत्।
लोभेन प्रचिनोत्यर्थं स कन्दर्प इति स्मृतः।।

त्वदर्थं न दत्तं द्रव्यं धरामरेभ्यः कथं तापत्रयात् सुखी स्याम्।।२८।।

धनं स्थितं यद्भुवि गोपितं तद्
यथा न विन्दन्त्यपरे मदीयाः।
उत्खातयित्वा न कृतो हि धर्मः
सुखी कथं स्यां करुणानिधेहम्।।२९।।

भावार्थ–हे करुणानिधान! कार्पण्यवश जिस धन को मेरे द्वारा भूमि में इस प्रकार गुप्त रखा गया कि मेरे पुत्रादि बान्धव भी उसके विषय में नहीं जानते। उसे निकाल कर धर्म में (दान आदि) व्यय नहीं किया। अतः मैं किस प्रकार सुखी हो सकता हूँ।

व्याख्या- धनं स्थितमिति। हे करुणानिधे! कार्पण्यादेव नाशः कष्टेनोपार्जितं धनं यत्स्थितं सुवर्णरजतादिकं तत्सर्वं भुवि गोपितं यत्र केऽपि न विन्दन्ति पुत्रादयो बान्धवा न जानन्ति तथाऽवनितले निखिलम्। अतिप्रियत्वात्। तद् द्रव्यमुत्खातयित्वा धर्मो न कृतः। येन धर्मेण सर्वं संपद्यते। तथाहि महाभारते–

विद्यां रूपं धनं शौर्यं कुलीनत्वमरोगिता।
राज्यं स्वर्गश्च मोक्षश्च सर्वं धर्मादवाप्यत।
अस्थिरं जीवितं लोके अस्थिरं धनयौवनम्।
इति ज्ञात्वा प्रयत्नेन कार्यं धर्मं स्वशक्तितः।।

पश्य धर्मविहीनानि दिवसा यान्ति देहिनाम्।
स लोहकारभस्त्रैः श्वसन्नपि हि जीवति।
शक्तिमानप्यशक्तोऽसौ धनवानपि निर्धनः।।

श्रुतवानपि मूर्खश्च यो धर्मविमुखो नरः।
पूर्वे वयसि यो धर्मो निकरोति स मूढधीः।।

स पश्चात्तप्यते सुप्तो भ्रष्टः सार्थादिवाध्वगः।
अप्रमत्तेन सततं धर्मः कार्यो विजानता।।

सहसा मरणे प्राप्ते धर्मः कर्त्तुं न शक्यते।
ग्रामे वा नगरे वापि तीर्थे वा पत्तनेऽपि वा।
तत्र पुत्र न वस्तव्यं यत्राऽधर्मपरो नरः।।

पश्यन्नेवाग्रतो मृत्युं धर्मं यो न चरेन्नरः।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्मनिरर्थकम्।।

धर्महीनो नरः क्वापि न सुखं लभते नृप।
सुवर्णमणिरत्नादिवाहनं गृहमासनम्।।

स्त्रियोऽन्नपानं पुत्राश्च चारुमाल्यनिलेपनम्।
आरोग्यं च तथा विद्या रूपं कीर्तिः सुखं बलम्।।

सर्वमेतन्मम मतं फलं पुण्यवनस्यतेः।
दानमेव परे श्रेष्ठं सर्वपुराणेषु भूपते।

कार्पण्यात् किमपि दानं न कृतम्। न स्वशरीरे जीवोऽपि भोगादिस्तुष्टः कृतः कथं तापत्रयात् सुखी स्याम्।।२९।।

कूपेऽन्धकारे पतितोऽस्म्यहं विभो
योषिद्गजव्यालभयादचेतनः।
करावलम्बं न हि चिन्तयेत्त्वां
सुखी कथं स्यां करुणानिधेऽहम्।।३०।।

भावार्थ- हे करुणानिधान! स्त्री, गज, व्याल के भय से अचेतन (नित्यानित्य विवेकशून्य) मैं (संसार रूपी) कूपान्धकार में गिरा हुआ हूँ, हे विभु (व्यापक, भगवान्) आपकी भुजाओं का आलम्बन करने को नहीं सोचा। तब मैं किस प्रकार सुखी हो सकता हूँ।

व्याख्या- कूपेऽन्धकार इति। हे करुणानिधे! कूपेऽन्धकारे पतितोऽस्मि। कथम्भूतोऽहमचेतनः। नित्याऽनित्यविवेकशून्यः। एवं चेद्वद कस्मात् पतितोऽस्मि। योषिद्गजव्यालभयात्। कूपे संसारवने योषिदसिमादाय हन्तुमागता अन्यां दिशं पलायितस्तत्र गजो हन्तुमागतः पुनरन्यां दिशं पलायितस्तत्र व्यालो व्यात्तास्यो मां ग्रसितुमागतः। यत्र यत्र पलायितस्तत्र तत्र मामनुगताः। कूपे संसारवने या योषित् सा जरा यो गजः स संवत्सरः स मृत्युः। एतेषां भयात् संसारकूपे पतितोऽस्मि मां समुद्धर्तुं कूपात् कोऽपि न समर्थः। यः करावलम्बेन मामुद्धर्त्तुं समर्थः श्रीकृष्णस्तं न स्मरति। हे विभो! यथा अजातपक्षाः खगा मातरं स्मरन्ति यथा दाम्नाऽवबद्धबालवत्साः स्तन्यं स्मरन्ति यथा दूरदेशगतं प्रियं कामेन विषण्णप्रियाः प्रियं स्मरन्ति तथा मे मनस्तापपीडितं त्वां स्मरति। पुनर्विषयेच्छासक्तं भवति पुत्रादिकृतेन येन केन प्रकारेण मनस्त्वयि तिष्ठति तर्हि कृतार्थः स्याम्। यथा कीटः कुड्यां संरम्भयोगेन तत्स्वरूपतां याति।

तथाहि भागवते-

गोप्यः कामाद् भयात् कंसो द्वेष्याच्चेद्यादयो नृपाः।
संबंधाद् वृष्णयः स्नेहाद्यूयं भक्त्या वयं तथा।।

तस्मात् केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत् किं करोमि सुतादिषु मनः सदैव तिष्ठति। त्वयि मनः स्थिरीभवतु नान्यत् प्रार्थये त्वयि मनश्चेन्न तिष्ठति तर्हि जनममरणयोर्दुःखं न नश्यति। उक्तं च-

कृष्ण कृष्ण महाबाहो जानीषे हृदयं नृणाम्।
तेन त्वां प्रार्थये विष्णो कुरु भक्तमनोरथम्।।

त्वत्कृपयैव संसारचक्रं विलीयते। कृपां विधेहि यथा संसारान्मुक्तः स्याम्।।३०।।

गतं वयो मे मन एव चञ्चलम्
विहाय युष्मच्चरणाम्बुपावनम्।।
करोति रागं रमणीष्वऽयूंस्त्वं
सुखी कथं स्यां करुणानिधेऽहम्।।३१।।

भावार्थ- हे करुणानिधान! मेरी आयु बीत गई है परन्तु मन अभी भी चंचल है जो आपके पवित्र (महापापनाशक) चरण-कमलों को छोड़कर रमणियों में प्रीति करता है। तब मैं किस प्रकार तापत्रय से सुखी रह सकता हूँ।

व्याख्या- गतं वयो मे मन एव चंचलमिति। हे करुणानिधे! मम वयो गतं मनस्तरलं यतो रमणीषु स्नेहं कुरुते। किं कृत्वा त्वच्चरणाम्बु विहाय। त्वच्चरणाम्बुगङ्गा तां विहाय। कथंभूतं चरणाम्बु ? पावनं महापातकनाशनम्। तथाहि महाभारते-

पापांशुमहावात्या पापद्रुमकुठारिका।
पापेन्धनदवाग्निश्च गङ्गा वै पुण्यवाहिनी।

कथंभूतं मनः ? अयूंस्त्वं भोग्यं कर्त्तुमशक्यं तथापि भोगेच्छां करोति यो जरठो भवति स तीर्थमाश्रयते। उक्तं च- वृद्धो न तीर्थाश्रयः। मनस्तीर्थं विहाय स्त्रीषु रतिं बहु मनुते यथा सारमेयो निरामिषं चास्थि चादाय मात्ति न त्यजति। मनस्तथा रतिं कर्त्तुमशक्यं त्यक्तुमपि न शक्नोति। तत्प्रयासो न कर्त्तव्यो यतः प्रयास्त् परं केवलमायुषो व्यय एव।

पुंसो वर्षशतं ह्यायुस्तदर्द्धं याति स्वप्नतः।
तदर्द्धं क्रीडतो याति विंशतिर्याति वार्द्धके।।

तथाहि भागवते–

निद्रया ह्रियते नक्तं व्यवायेन च वा वयः।
दिवा चार्थेहया राजन् कुटुम्बभरणेन च।।

गतेऽपि वयसि मनसो विषयेष्वरुचिर्न स्यात्। तस्मात्कौमार एव भागवतान् धर्मानाचरेत्। मुकुन्दचरणारविन्दे यदि भक्तिः स्यात्तदायुषो व्ययो न। तथाहि भागवते–

आयुर्हरति वै पुंसामुद्यन्नस्तं च यन्नसौ।
तस्यर्त्ते यत्क्षणो नीत उत्तमश्लोकवार्त्तया।।

तथाहि महाभारते–

कर्मणा मनसा वाचा वासुदेवमतन्द्रितः।
भजते सर्वलोकेशं स मोक्षमधिगच्छति।।

किं करोमि मनो जरठेऽपि चरणारविन्दं न चिन्तयति कथं तापत्रयात् सुखी स्याम्।।३१।।

प्राप्तं जरायां यदि नाथ मे वयस्
तदैव बुद्धिर्गलिता गतं महत्।।
निन्दन्ति ते मां सुतदारभृत्याः
सुखी कथं स्यां करुणानिधेऽहम्।।३२।।

भावार्थ– **हे करुणानिधान! नाथ (स्वामी) मेरी आयु वृद्धावस्था को प्राप्त हो गई है इसलिए मेरी बुद्धि चली गई है, मेरा गौरव (सम्मान) भी समाप्त हो गया है, वे पुत्र, स्त्री, सेवक आदि मेरी निन्दा करते हैं। तब मैं किस प्रकार तापत्रय से सुखी हो सकता हूँ।**

व्याख्या- प्राप्तं जरायामिति। हे करुणानिधे! मम वयो जरायां प्राप्तं तदैव बुद्धिर्गता महद्गतं गौरवम्। सर्वे सुतदारभृत्या मां निन्दन्ति। अस्य बुद्धिर्गता जरठो जातः किं प्रष्टव्यः। कार्येषु किमस्य भयं क्रियताम्। कार्यमिदं यौवनसमये यत् कृतं कर्म तत् स्मृत्वा मुह्यामि। मरणे दुःखमेकस्मिन्नहनि, जरादुःखं पदे पदे। जरायां बहवो दोषाः। तथाहि विष्णुपुराणे–

जराजर्जरदेहश्च शिथिलावयवाः पुमान्।
विचलच्छीर्णदशनः वलीस्नायुशिरावृतः।।

दूरप्रनष्टनयने व्योमान्तर्गततारकः।
नासाविवरनिर्यातलोमपुञ्जश्चलद्वपुः ।।

प्रकटीभूतसर्वास्थिर्नतपृष्ठास्थिसंहतिः ।
उत्सन्नजठराग्नित्वादल्पाहारोऽल्पचेष्टितः।।

कृच्छ्राच्चक्रङ्मणोत्थानशयनाशनचेष्टितः।
मन्दीभवच्छ्रोत्रनेत्रे गलल्लोलाविलोचनः।।

अनायत्तैः समस्तैश्च करणैर्मरणोन्मुखः।।

सकृदुच्चारिते वाक्ये समुद्भूतमहाश्रमः।
श्वासकासमहायाससमुद्भूतप्रजागरः।।

अन्येनोत्थाप्यतेऽन्येन तथा संवेश्यते जरी।
भृत्यपुत्रकलत्राणामवमानबहिःकृतः।।

प्रक्षीणाऽखिलशौचश्च विहाराहारसस्पृहः।
हास्यः परजनस्यापि निर्विण्णाशेषबान्धवः।।

नाद्रियन्ते यथापूर्वं कीनाश इव गोरजम्।
पराभूतो हि जरया सर्वैश्च परिभूयते।।
हृतं तारुण्यमाणिक्यं धनहीनः पुमानिव।।

किं ब्रवीमि यास्तरुण्यो यौवनसमये मदीयं रूपं विलोक्य स्मरपीडिता भवन्ति ता अधुना मां दृष्ट्वा प्रहसन्ति।

मदीयं सुमहत् ब्राह्मं यौवनं शर्मदं नृणाम्।
स्तेनरूपेण कालेन हृतं मे पश्यतः सखे।।

तं यौवनं रत्नमुत्तमं मूल्यं कृतं हि रत्नानां न मौल्यं यौवनस्य च। यदारभ्य मृत्युभगिनी कालकन्या महद्गृहे प्रविष्टा तथा सर्वं गृहं मुष्णम्। अस्यामवस्थायां तव नाम नेतुमशक्तः, भजनं कुतः। विना भजनं कथं तापत्रयात् सुखी स्याम्।।३२।।

शय्या दृढा मे नहि तूलिका च
शुक्लं न वासो मम विग्रहेषु।
रुद्धो हि कण्ठः कफवातपित्तैः
सुखी कथं स्यां करुणानिधेऽहम्।।३३।।

भावार्थ- हे करुणानिधान! मेरी शय्या दृढ नहीं है (खटमलों से युक्त) और तूलिका तकिया भी (जुओं से युक्त) जीर्ण है। मेरे शरीर पर श्वेत वस्त्र नहीं है। कफ, वात और पित्त से कण्ठ भी अवरुद्ध है। अब भी आपका भजन नही करता। तब तापत्रय से किस प्रकार सुखी रहा सकता हूँ।

व्याख्या- शय्या दृढेति। हे करुणानिधे ! बान्धवाः सुतादयश्च मम मरणमपि वाञ्छन्ति। कदायं निधनं यास्यति सत्यं शतं दास्यामः। अपरं किं ब्रवीमि मम शय्या दृढा न, शिथिला मत्कुणशतान्विता। तूलिकाऽपि न। कन्था जीर्णा यूकान्विता। मम विग्रहेषु शुक्लं वासो न। कफवातापित्तैः कण्ठो घुरघुरायते। इयमवस्था मदीया परेच्छयाऽशनपानादिकं लभ्यते कथमिदानीं तव भजनं भवति। परसैन्ये समागते कथं दुर्गरचनं जायते। अद्यापि पुत्रादीनां स्नेहं त्यक्तुं न शक्नोमि।

अहर्निशं तेष्वेव मनः प्रियायाः सङ्गमरहस्यं शिशूनां मधुराक्षराणि कुटुम्बपोषणेन क्षीयमानं निजमायुर्न्न वेद्मि।। उक्तं च–

यावन्न ग्रसते रोगैर्य्यावन्नोपेति ते जरा।
यावन्न क्षीयते चायुस्तावच्छ्रेयः समाचर।।

पुत्रादीनां स्नेहेन आत्मनः श्रेयो न कृतम्। परमपुरुषार्थं प्रति नरविग्रहं प्राप्तं तन्निष्फलं गतम्। कामसुखं शूकरादिष्वपि संभवति भगवद्भजनं न मानुषव्यतिरेकेण। ते त्वज्ञा ये त्वेवं प्रवदन्ति पश्चिमे वयसि मोक्षाराधनं करिष्यामः। वार्द्धके त्वियमवस्था। यौवनं कामिनीभोगेन गतम्। कौमारः क्रीडया गतः। हा कष्ट भूयोऽपि मानुषं जन्म प्राप्स्यामि। महापुण्यप्रभावेन मानुषं जन्म लभ्यते। कर्मभूमौ यत्र महापुरुषप्रसङ्गेन संसारसागरं तरति। तथाहि योगवासिष्ठे–

महापुरुषसंसर्गात् संसारार्णवलङ्घने।
युक्तिः संप्राप्यते रामदृढानौरिव नाविकात्।

एवमेव जन्म गतं कथं तापत्रयात् सुखी स्याम्।।३३।।

कौमारपौगण्डकिशोरकाले
तथाहि यूनः समयेऽर्थवन्तम्।।
स्तुवन्ति ये ते विमुखा बभूवुः
सुखी कथं स्यां करुणानिधेऽहम्।।३४।।

भावार्थ– हे करुणानिधान! जो बान्धव कौमारावस्था, पौगण्डावस्था (५ से १६ वर्ष तक की आयु) तथा किशोरावस्था और उसी प्रकार युवावस्था में द्रव्योपार्जन में समर्थ मेरी स्तुति करते थे, वही आज (अर्थहीन, उद्यमहीन) मेरे प्रति विमुख हो गए हैं। तब किस प्रकार मैं तापत्रय से सुखी रह सकता हूँ।

व्याख्या- कौमारपौगण्डकिशोरकाल इति। हे करुणानिधे ! ये बान्धवाः

कौमारं पञ्चमाब्दान्तं पौगण्डं दशमावधिम्।
कैशोरमापञ्चदशाद्यौवनं तु ततः परम्।।

यौवनसमये अर्थवन्तं द्रव्योपार्जनसमर्थं मां स्तुवन्ति तेऽधुनार्थविहीनमनुद्यमं मां प्रति विमुखा बभूवुः। संभाषणमपि तत्यजुः। इदानीमर्थविहीनोऽहं दातुमसमर्थः। दाने सति सर्वे प्रीतियुक्ता भवन्ति। यत् स्थितं वित्तं तदवनितले स्थापितं तदुत्खातयित्वा सुतकलत्रादिभिर्न्नीतम्। कार्पण्यात् सत्पात्रे कृष्णार्पणं न कृतम्। निजशरीरे जीवात्मा परमेश्वरो भोगेन न परितोषितः, किंतु दत्तभुक्तफलं धनमिति। तद् द्रव्यमुत्खातयित्वा धर्मो न कृतः। न ब्राह्मणमुखे हुतम्। तथाहि भविष्योत्तरे-

पृथिव्यामन्नपूर्णायां वयमन्नस्य काङ्क्षिणः।
सौमित्रे नूनमस्माभिर्न्न ब्राह्मणमुखे हुतम्।

उक्तं च -

यैर्न्न श्रुतं भागवतं पुराणं नाराधितो यैः पुरुषः पुराणः।
मुखे हुतं यैर्न धराऽमराणां तेषां वृथा जन्म गतं नराणाम्।।

तथाहि भारते-

अन्नं वै प्राणिनां प्राणाः इत्युवाच प्रजापतिः।
तस्मादन्नप्रदो राजन् प्राणदः प्रोच्यते बुधैः।।

अन्नदः पशुमान् लोके धनवान् भूमिवानपि ।
आयुष्मान् भोगवांश्चैव सुखी च प्रेत्य जायते।।

कृत्वा हि सुमहत्पापं पश्चादन्नप्रदो भवेत्।
विमुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति।।

येषामर्थे रक्षितं वित्तं ते त्विदानीं विमुखाः परत्र किं करिष्यन्ति। न ते मदीया, न तेषामहं, मोह एव हि केवलम्। इयमवस्था मदीया। अन्नं दातुमसमर्थः कथं तापत्रयात् सुखी स्याम्।।३४।।

येषामिहार्थे विविधैरुपायै
रुपार्जितं द्रव्यमनेकसंख्यया।।
स्नेहं परित्यक्तमनुद्यमे तैः
सुखी कथं स्यां करुणानिधेऽहम्।।३५।।

भावार्थ- हे करुणानिधान! जिन (सुत स्त्री आदि) के लिए इस संसार में विविध उपायों के द्वारा प्रभूत धन उपार्जित किया। इस समय उद्योगरहित होने पर इनके द्वारा मेरा त्याग कर दिया गया है। तब किस प्रकार मैं सुखी रह सकता हूँ।

व्याख्या- येषामिहार्थे इति। हे करुणानिधे ! येषां सुतकलत्रादीनामर्थे इह संसारे विविधैरुपायैर्भूरिधनं चोपार्जितं तैरिदानीमनुद्योगे मयि सर्वैः स्नेहः परित्यक्तः। तथाहि महाभारते-

एकः करोति कर्माणि भुङ्क्ते यत्र महाजनः।
भोक्तारोऽपि विमुच्यन्ते कर्त्ता दोषेण लिप्यते।।

ममैवापराधः यद् द्रव्यं तेषामर्थेऽवनितले गोपितं तत्तवार्पणं न कृतम्। महोत्सवादिकं च त्वत्कथाऽमृतं ये शृण्वन्ति तेभ्यो न दत्तम्। तथाहि भागवते-

न यत्र वैकुण्ठकथासुधापगा
न साधवो भागवतास्तदाश्रयाः।
न यत्र यज्ञेशमखा महोत्सवाः
सुरेशलोकोऽपि न वै स सेव्यताम्।।

तथाहि महाभारते–

विद्यमाने धने लोभाद्दानधर्मविवर्जितः।
स याति नरकं घोरमक्षयं भरतर्षभ।।

तथाहि गरुडपुराणे–

आत्मायत्तं धनं यावत्तावद्द्विप्रे समर्पयेत्।
पराधीनं मृते सर्वं कृपयापि ददाति चेत्।

विना वित्तं धर्मो न भवति। धर्मं विना त्वयि किमर्पितं स्यात्त्वदर्पणमृते कथं संसारोपरमः स्यात्। त्वय्यन्नमपि न निवेदितम्।

अन्नं निवेदितं विष्णोस्तदन्नं भक्षयेद्यदि।
पापानि तस्य नश्यन्ति स याति परमां गतिं।।

त्वच्चरणारविन्दाद्विमुखोऽहं वार्द्धके किमपि कर्त्तुं न शक्यते कथं तापत्रयात् सुखी स्याम्।।३५।।

कृतान्तसैन्यैर्नगरं हि रुद्धं
बलैर्विहीनं ज्वरगुल्मशूलैः।।
अहं त्वशक्तः प्रतियोद्धुमेतैः
सुखी कथं स्यां करुणानिधेऽहम्।।३६।।

भावार्थ– हे करुणानिधान! ज्वर, गुल्म और शूल रूपी कृतान्त सेना (व्यधियों के) द्वारा बलविहीन (क्षीणवीर्य) नगर (शरीर) रुद्ध कर दिया गया है। इन वीर योद्धाओं के साथ युद्ध करने में मैं असमर्थ हूँ (तुम्हारा नाम जप, कथामृत पान नहीं किया) तब किस प्रकार मैं तापत्रय से सुखी रह सकता हूँ।

कृतान्तसैन्यैरिति। हे करुणानिधे ! संकटे पतितोऽस्मि। नगरं रुद्धम्। नगरं शरीरं कृतान्तसैन्यैः कृतान्तो यमस्तस्य वीरैर्व्याधिभिः।

कथंभूतैः सैन्यैः ? ज्वरगुल्मशूलैः। कथंभूतं नगरम् ? बलैर्विहीनम्। इन्द्रियैः क्षीणवीर्ये नगरे रुद्धे सति कीदृशोऽहम् ? तथाहि विष्णुपुराणे-

श्लथग्रीवाङ्घ्रिहस्तोऽथ व्याप्तो वेपथुना भृशम्।
हिरण्यधान्यतनयभार्याभृत्यगृहादिषु //
एते कथं भविष्यन्ति अतीव ममताकुलः।
परिवर्त्तमानताराक्षिर्हस्तपादान्मुहुः क्षिपन्।।
संशुष्यमाणताल्वोष्ठः कण्ठो घुरुघुरायते।।

एतादृशोऽहं जातः। एतैर्वीरैः सह योद्धुं हन्तुमशक्तः। एतैर्वारं वारं नगरं लुठितं किं करोमि। यदि तव नामबलं स्यात्तर्हि एतैः किं कर्त्तुं शक्यते। अजामिलः पुत्रव्याजेन नारायण इत्युच्चैर्व्याजहार। तदैव भगवद्दूताः समागताः। यमभटान् दूरीकृत्य अजामिलममुञ्चत्। तव नामविहीनोऽहं तस्मादीदृशी मदीया गतिः। तथाहि योगवासिष्ठे-

न जाने जानकीजाने राम त्वामस्मरन्नरः।
यमदूतैः समाहूतः क्लीबः कर्त्ता किमुत्तरम्।।
गतो यामो गतौ यामौ गता यामा गतं दिनम्।
हा हन्त किं भविष्यामि न स्मरामि रघूद्वहम्।

तव नाम न जप्तं कथामृतं न श्रुतम्। तथा भागवते-

नूनं दैवेन निहता ये चाच्युतं कथासुधाम्।
हित्वा शृण्वन्त्यऽसद्गाथाः पुरीषमिव विड्भुजः।।

मया किमपि न कृतं कथं तापत्रयात् सुखी स्याम्।।३६।।

प्राप्तः स कालो जगतां प्रभक्षकः
पृच्छन्ति ते मां सुतदारभृत्याः।
क्व गोपितं भूरि धनं स्थितं यत्
सुखी कथं स्यां करुणानिधेऽहम्।।३७।।

भावार्थ–जगत् का भक्षक वह काल (मृत्युकाल) समक्ष आ गया है अर्थात् मृत्यु के सम्मुख खड़ा हूँ परन्तु वे पुत्र, स्त्री, सेवक मुझसे यही पूछ रहे है कि बताओ प्रभूत धन कहाँ छुपाकर रखा है? तब किस प्रकार मैं तापत्रय से सुखी हो सकता हूँ।

व्याख्या– **प्राप्तः स काल इति।** हे करुणानिधे! स कालः प्राप्तः। कल संख्याने कलयति गणयति दिनानि जन्तूनां कालो हिंसकः। कथंभूतः कालः? जगतां प्रभक्षकश्चतुर्दशभुवनग्रासकः। तथा भागवते–

भुञ्जानः प्रपिबन् खादन् बालकस्नेहयन्त्रितः।
भोजयन् पाययन् मूढो न वेदागतमन्तकम्॥

किंस्वरूपेणागतः कस्मिन् मार्गे नेतुम्। तथा विष्णुपुराणे–

याम्यकिंकरपाशादिग्रहणं दण्डताडनम्।
यमस्य दर्शनं चोग्रमुग्रमार्गविलोकनम्॥

करम्भबालुकावह्नियन्त्रशस्त्रादिभीषणे।
प्रत्येकं नरके याश्च यातना यत्र दुःसहाः॥

क्रकचैः पीड्यमानानामूखायां चापि दह्यताम्।
गृध्रैः संभक्ष्यमाणानां द्वीपिभिश्चोपभुज्यताम्॥

क्वथ्यतां तैलमध्ये क्लिद्यतां क्षारकर्दमे॥

तथाहि गरुडपुराणे–

वृक्षच्छाया न यत्रास्ति यत्र विश्रते नरः।
गृहीतः कालपाशैस्तु तैश्च कर्मभिरुल्वणैः॥

तस्मिन् मार्गेन चान्नाद्यं येन प्राणान् प्रपोषयेत्।
न जलं दृश्यते तत्र तृषा येन विलीयते॥

क्षुधया पीडितो याति तृषया च महापथि।
शीतेन कम्पित: क्वापि यममार्गे सुदुस्तरे।।

इदृग्विध: स वै पन्था विज्ञेयो दारुण: खग:।

एता अन्याश्च यातना कृतान्ते लोके भोक्तुं प्रचलतोऽहं सुतदारभृत्या मां पृच्छन्ति यद्भूरि धनं सुवर्णरजतादिकं तत् क्व वर्त्तते ब्रूहि, सर्वं पत्रे लेखनीयम्, मम शोको न, धने लोभः। ये पूर्वमेवं ब्रूयुस्त्वां विना क्षणमपि न जीविष्याम: ते त्विदानीमेवं वदन्ति, हा कष्टम्। चतुरशीतिलक्षेषु जीवेषु यत्र जन्म भवति तत्र त्वयि भक्तिर्भवतु तत्तु बहु मन्ये। मनुष्यजन्मनि त्वयि भक्तिर्न्न तर्हि मानुषं जन्म मा भूत्। तथाहि विष्णुपुराणे-

नाथ योनिसहस्त्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम्।
तेषु तेष्वच्युतभक्तिरच्युतास्तु सदा त्वयि।।

त्वत्पादाम्बुजैकदेशप्रसादश्चेत्तदा भक्तिर्भवति तदा मम भयं न। उक्तं च- *देवकीतनयपूजनपूतेति*। यदि भक्त: स्यां तदा संसारान्मुक्त: स्याम्।।३७।।

नीतं हि सर्वं सुतदारभृत्यै
र्न्न प्राह कश्चित् कुरु गोप्रदानम्।।
अहं त्वशक्त: प्रतिवक्तुमेतत्
सुखी कथं स्यां करुणानिधेऽहम्।।३८।।

भावार्थ - हे करुणानिधान! पुत्र, स्त्री, सेवक आदि के द्वारा सब कुछ (धन, सम्पत्ति) ले लिया गया किसी ने (बन्धु-बान्धव) मुझसे गो प्रदान करो ऐसा नहीं कहा। मैं इस प्रकार (गोदान) करने में असमर्थ हूँ तब किस प्रकार तापत्रय से सुखी रह सकता हूँ।

व्याख्या- नीतं हि सर्वमिति। हे करुणानिधे! यत्पारलौकिकार्थं रक्षितं वित्तं सुवर्णरजतादिकं तत्सर्वं सुतदारभृत्यैर्न्नीतं, किन्तु द्रव्यमपि

मोक्षकारणम् अदत्वा म्रियते यस्ततो दुःखतरं नकिम्। उक्तं च–

बोधयन्ति न याचन्ते भिक्षाचारा गृहे गृहे।
दीयतां दीयतां नित्यमदातुः फलमीदृशम्।।

हे हरे ! एवं चेद् ब्रूहि विषये मनो किमर्थं क्रियते विषयस्तु त्याज्य एव सत्यम्। यस्मिन्नाश्रमे यो धर्मः स पालनीयः। विनार्थैर्ग्रहमेधिनां धर्मः कथं संभवति। तद्वित्तं विषवन्न भवति यत्त्वदर्थे व्ययं क्रियते। तत्तु तव तुष्टिकारकम्। सर्वे गृहमेधिनो विषयान् न त्यजन्ति। यदि सर्वैस्त्यज्यते तर्हि शून्या भवति मेदिनी। बहूनां मध्ये कश्चिद् दुस्त्यजान् कालत्रादीन् त्यक्त्त्वा तव पादम्बुजं प्राप्नोति। यदि सतां विषयः निरयपदं (?) भवति तर्हि सुदाम्नो भक्तस्य महदैश्वर्यं किमर्थं दत्तम्। उक्तं च–

चाण्डालश्च दरिद्रश्च द्वावेव सदृशौ मम।
चाण्डालस्य न गृह्णन्ति दरिद्रो न प्रयच्छति।।

तेषां सुतादीनां मध्ये कोऽपि मे प्रियो न। कुतः ? कोऽप्येवं न वदति गोप्रदानं कुरु। अहमेतद्वक्तुमसमर्थः। तथाहि महाभारते–

ब्रह्मस्वहारी गोघ्नश्च भ्रूणहा पितृघातकः।
महापातकयुक्तोऽपि गवां दानेन शुद्ध्यति।।

प्रसादा यत्र सौवर्णाः शय्यारत्नोज्वलास्तथा।
बालाश्चासरसो यत्र तत्र गच्छन्ति गोप्रदाः।।

मधुक्षीरवहा नद्यः सर्पिर्द्दधिवहास्तथा।
भक्ष्यभोज्यमयाश्चैव शैलाः शतसहस्रशः।।

गोजनितपुण्यं तवार्पणं क्रियते। तद् द्रव्यममृतोपमं येन पुंसा निरुज्येन सत्पात्रे वित्तं कृष्णार्पणं न कृतं तेनैवात्मनात्मा वञ्चितः। यस्य बुद्धिर्मयि म्रियमाणे सुतादयोऽर्थं ते दापयिष्यन्ति तेत्त्वज्ञाः। गोदानेऽप्यशक्तः कथं तापत्रयात् सुखी स्याम् ।।३८।।

ये भ्रातृपुत्राः सुहृदश्च दारा
अन्येऽपि ये द्रष्टुमिहागतास्ते।
त्रातुं न मां वैकृतिनः सहायाः
सुखी कथं स्यां करुणानिधेऽहम्।।३९।।

भावार्थ- हे करुणानिधान! जो भाई, पुत्र, सुहृद, मित्र, स्त्री तथा अन्य जो बन्धु-बान्धव, सम्बन्धी मुझे (प्राण प्रयाण काल में) देखने यहाँ आए हैं, वे इस दुरावस्थाा से (कष्ट से) रक्षा करने में मेरे सहायक नहीं हैं। तब किस प्रकार मैं तापत्रय से सुखी रह सकता हूँ।

व्याख्या- ये भ्रात्रपुत्रा इति। हे करुणानिधे ! ये भ्रातृपुत्रादयः सुहृदोऽमित्राणि सम्बन्धिनो बान्धवाश्च सुकृतिनः पुण्यात्मानोऽपि ये प्राणप्रयाणसमये मां द्रष्टुमागतास्ते मां त्रातुं न शक्तास्ते राजभटात् त्रातारो न भवन्ति, कालात् त्रातारः कथं स्युः। तस्मात्त्वामृते त्रातारमन्यं न पश्यामि। यो मां रक्षितुं समर्थस्त्वां तं न स्मरामि। ये त्वशक्ता रक्षितुं तान् पुत्रादीश्चिन्तयामि। येषां सङ्गेन मदीया गतिरीदृशी। त्वच्चरणारविन्दे मनो नारोपितम्। तथाहि पद्यावल्याम् -

न ध्यातोऽसि न कीर्त्तितोऽसि न मनागाराधितोऽसि प्रभो।
नो जन्मान्तरगोचरे तव पदाम्भोजे च भक्तिः कृता।।
तेनाहं बहुदुःखभाजनतया प्राप्तो दशामीदृशीम्।
त्वं कारुण्यनिधे ! निधेहि करुणां श्रीकृष्ण दीने मयि।।

त्वत्कथामृतं न श्रुतं। तथाहि वृहद्ब्राह्मणे-

श्रवणेन परा सिद्धिः श्रवणेन परं सुखम्।
श्रवणेन परं ज्ञानं धर्मादिश्रवणेन च।।

कार्पण्यात् किमपि पुण्यं न कृतं तद् द्रव्यं परित्यज्य चलितो दूरमध्वानं न मदीय धनं कदं न पुत्रादयः फलदाः। उक्तं च-

अदाता पुरुषस्त्यागी स्वधनं त्यज्य गच्छन्ति।
दातारं कृपणं मन्ये मृतोऽप्यर्थं न मुञ्चति।

एवमात्मनः शुभं न चिन्तितं। कथं तापत्रयात् सुखी स्याम्।।३९।।

हर्म्यं सुरम्यं यदकारि तन्मया
नीतं परैरश्वकरी धनादिकम्।
निष्कासितोऽहं भवनात् कुटुम्बैः
सुखी कथं स्यां करुणानिधेऽहम्।।४०।।

भावार्थ- हे करुणानिधान! मैने जो सुन्दर गृह निर्माण किया, अश्व, हाथी, धनादि अर्जित किया, वह पुत्रादि द्वारा ले लिया गया। कुटुम्बी जनों द्वारा मैं भवन से निष्कासित कर दिया गया हूँ। तब किस प्रकार मैं सुखी रह सकता हूँ।

व्याख्या- हर्म्यमिति। हे करुणानिधे ! हर्म्यं सुरम्यं गृहं चित्रितं यन्मयाऽकारि तत्सुतैर्न्नीतम्। अश्वो नीतः करी नीतः अपरं यत्किंचित्सुवर्णरजतादिकं यत्सर्वं नीतम्। अपरं किं ब्रवीमि। सुतादिभिर्भवनान्निष्कासितः। कथयन्ति किं ? क्षणमपि गेहे न रक्षणीयः। येषां स्नेहेन बद्धोऽहं ते एवं वदन्ति। यन्निमित्तं सदसद्व्यापारैर्नाना कर्म कृतं त्वद्भजनं विहाय। संसारान्मोक्तुं त्वां विना कोऽपि। त्वां न स्मरामि। ते मयि निर्दयास्त्वामपि न स्मारयन्ति। धनादिकं पृच्छन्ति क्व गोपितम्। अधुना शोच्योऽहं यतः किमपि कर्त्तुं न शक्नोमि। समर्थे सति विषये मनोऽभूत्। यदा सानुकूलो भगवान् भवेत् तदा भजने बुद्धिः स्यात्।। तथाहि विज्ञप्तिशतके-

लोकेऽस्मिन् कति नातिदीनमतयः स्वामिन् त्वया नेत्रयोः
किञ्चित् किञ्चिदुदञ्चचञ्चलचमत्कारैः कृतार्थी कृताः।।
अस्माकं तु कथैव यन्न विदिता नो वाधुनारभ्यते
तत्को नाम ममापराधनिवहः को वा तवायं ग्रहः।।

तथाहि पद्यावल्याम् –

त्वत्कृपामयकटाक्षवीक्षणादेव देव यदि मे कृतार्थता।
तर्हि तारय पतन्तमापदामर्णवे यदुकुलावलंबन।।

श्रीकृष्ण कृपयैव सुखी भवामि तां विना कथं तापत्रयात् सुखी स्याम्।।४०।।

यद्यन्ममत्वं कृतमेव पूर्वं
तत्तद्गतं मे न हि किञ्चिदस्ति।।
शुभाशुभौ मे पुरतः स्थितौ हि
सुखी कथं स्यां करुणानिधेऽम्।।४१।।

भावार्थ–हे करुणानिधान! (अज्ञान के कारण) जो ममत्व (आसक्ति) पूर्व में किया अर्थात् धन, स्त्री, पुत्र, भृत्यादि में, यह सब मेरा है यह ममत्व भाव रखा। वह सब अब समाप्त हो गया, क्योंकि मेरा कुछ भी नहीं है। अर्थात् यह सब कुछ भी मेरे साथ नहीं जा सकता है। मेरा किया शुभ–अशुभ कर्म ही मेरे सामने स्थित है (वही मेरे आगे चलता है)। तब मैं किस प्रकार सुखी रह सकता हूँ।

व्याख्या– **यद्यन्ममत्वमिति।।** हे करुणानिधे! ममाऽज्ञानमिदं पूर्वं यन्ममत्वं कृतमेतावत्कालपर्यन्तं मदीयमिदं सुवर्णरजतादिकम्। एते मदीया गजाश्वादयः। एते सुतदारबान्धवा मामकीनाः। एते दासीदासगणाः। एते गोमहिष्यः। अपरं यद्विषयादिकं तत्सर्वं मामकीनम्। तन्मृषा। मम

किमपि न। यदि मम तर्हि मया साकं कथं न व्रजन्ति। मम किं शुभं पुण्यम् अशुभं पापमुभावपि ममाग्रतश्चलितौ। तथाहि–

सुकृतं दुःकृतं नृणामग्रे धावति धावति।
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति।।

ममत्वं यत्कृतं पूर्वं तत्सर्वं गतं येषामर्थे धनादिकं रक्षितं ते केऽपि न मदीयाः। केचिद्वदन्ति सुतादयः कथं जीविष्यन्ति तेषां रक्षितव्यं धनं ते तु मूर्खाः।। तथाहि रामायणे–

न पिता पुत्रदोषेण पुत्रो वा पितृकर्मणा।
सुखमाप्नोति दुःखं वा स्वं स्वं कर्मानुजायते।।

यानि यानि च दानानि स्वयं दत्तानि मानवैः।
तानि तानीह सर्वाणि चोपतिष्ठन्ति चाग्रतः।।

तथाहि महाभारते–

न भोगतो नश्यति संयदात्मनः।
शुभं यदा नश्यति चात्मनो ध्रुवम्।।

मृषा भूतेष्वासक्तं मनः कथं तापत्रयात् सुखी स्याम्।।४१।।

सा पूयशोणितमूत्रविड्वहा
वर्त्तते वैतरणी सुदुस्तरा।।
कथं तरिष्येऽकृतगोप्रदानः
सुखी कथं स्यां करुणानिधेऽहम्।।४२।।

भावार्थ– हे करुणानिधान! यमद्वार पर वर्तमान मवाद, रक्त, मूत्रयुक्त, वैतरिणी अथवा संसार रूपी वैतरिणी को पार करना अत्यन्त कठिन है। मैने गो का दान भी नहीं किया। तब किस प्रकार वैतरिणी पार

करुँगा। वैतरिणी पार करने के लिए गोप्रदान आवश्यक माना गया है। वह भी मेरा द्वारा नहीं किया गया। तब किस प्रकार तापत्रय से सुखी रह सकता हूँ।

व्याख्या- सा पूयशोणितमूत्रविड्वहेति। हे करुणानिधे! यमद्वारे वैतरणी नाम सरिल्लङ्घनीया ? कथंभूता ? दुस्तरा तर्त्तुमयोग्या कैश्चित्पारं गन्तुं न शक्यते। कथम्भूता ? पूयशोणितमूत्रविड्वहा। एतैर्दुर्गन्धा शतयोजनविस्तरा। तां कथं तरिष्ये केन प्रकारेण केन बलेन कया बुद्ध्या। कथंभूतोऽहम् ? अकृतगोप्रदानः। न कृतं गोप्रदानं येन सः। यो भूसुराय गां ददाति तस्य दातुः कैवर्त्ता नावमादाय वैतरणीतटे समायान्ति गोप्रदातारं पारमुत्तारयन्ति। गौरेव नौर्भवति वासैव पारमुत्तारयति। यो धरामराय धेनुं नो यक्षति तस्य पुंसः कृतान्तभटाः पाशैः कण्ठं बध्वा तस्यां नरकनद्यामितस्ततो घृष्यमाणं पारमुत्तारयन्ति। यद्वा संसार एव वैतरणी तस्यामन्योन्यतो यानि जन्मादीनि तस्याः पारे स्थितस्त्वमेकः। एवं चेद्वदन्ति मे तद् दुष्करमिति भक्तांस्तारयिष्यामि इमं दुरवग्रहं मा कृथाः। हे श्रीकृष्ण त्वद्वीर्यगायनमेव महामृतं तस्मिन् मग्नं चित्तं यस्य सोऽहं नोद्विजे किंतु त्वद्विमुखान् शोच्यामि तव कथामृताद्विमुखं चेतो येषां तान्। लोभासक्तेन मया गोप्रदानं न कृतं कार्पण्यात्तव कथामृतं न श्रुतम्। तद्धनं विषवद्भूतम्।। तथाहि गरुडपुराणे-

मार्गे पुनः पुनस्तस्य बुभुक्षा पीडयत्यलम्।
तिष्ठ तिष्ठेति मृतको मदीयः सुतबान्धवः।।
दुःखमेनैव जातानि पतितः शोकसागरे।
एवं विलपते मार्गे ताड्यमानस्तु किंकरः।।
आयान्ति संमुखास्तत्र कैवर्त्तास्तु सहस्रशः।
वयं तु तर्तुं कामाय महावैतरणी नदी।

शतयोजनविस्तीर्णा पूयशोणितसंकुला।
दत्वा पापं हरेत् सर्वं विष्णुलोकं च सा नयेत्।।

देया च विदुषे धेनुः सा नदी तर्त्तुमिच्छंति।
धेनुके त्वं प्रतीक्षस्व पुच्छलग्नस्तराम्यहम्।।

तरन्ति तां च दानेन अन्यथा च पतन्ति वै।
इममुच्चारयेन्मन्त्रं संगृह्य सजलान् कुशान्।।

यमद्वारे महाघोरे श्रुत्वा वैतरणीं नदीम्।
तर्त्तुकामो ददाम्येनां तुभ्यं वैतरणीं नमः।।

धेनुके त्वं प्रतीक्षस्व यमद्वारे महाभये।
तरणार्थं भवेद्देवि वैतरणि नमो नमः।।

त्वदर्थे गौर्न्न दत्ता विप्राय कथं तापत्रयात्सुखी स्याम् ।।४२।।

वदन्ति सर्वे परिबद्धकक्षाः
रुदन्ति हा हेति पुनः पुनस्ते।।
शीघ्रं श्मसाने परिनीयतां वै
सुखी कथं स्यां करुणानिधेऽहम्।।४३।।

भावार्थ– हे करुणानिधान! मेरे चारो ओर खड़े हुए सुत, स्त्री बान्धव आदि हाय-हाय कर (धन के लोभ में) रोते हैं और कहते हैं कि इसे शीघ्र ही शमशान भूमि में ले चलो। (मेरे द्वारा दान, यज्ञ, तप भजन कुछ भी नहीं किया गया) तब किस प्रकार मैं सुखी रह सकता हूँ।

व्याख्या– वदन्तीति।। हे करुणानिधे! सुतदारबान्धवाः रुदन्ति। किम्? हा हेति बारं बारम्।। कथंभूता बान्धवाः ? परिबद्धकक्षाः। परि समन्ताद्बद्धः कच्छो यैस्ते। किं वदन्ति ? शीघ्रं श्मशाने परिनीयताम्।

क्षणमपि भवने न रक्षणीयः। रक्षिते सति जीवति चेत्तर्हि संवर्धनादिकं गृह्णाति इति ज्ञात्वा रुदन्ति। धने लोभेन, न तु मत्स्नेहेन। यदि मयि स्नेहस्तर्हि पुण्यं तैः कथं नाकारि। उक्तं च–

पिता न स स्याज्जननी न सा स्याद्।
बन्धुर्न स स्याच्च सुतो न स स्यात्।
यो वै स्वबंधोर्न्न हि पारलौकिकम्।
करोति मूढः स च वै रिपुर्महान्।।

एतादृशे पथि चलतोऽहम्। तथाहि गरुडपुराणे–

अविश्राममनालम्बमपाथेयमदैशिकम्।
ततः कान्तारमध्वानं कथमेको गमिष्यसि।।
यतस्तमपि यास्यन्तं न कश्चिदनुयास्यति।
एकाकिना तेन गंतव्यं स्वमादाय शुभाशुभम्।।

तथैव सव्रजन्मार्गे पुत्र पुत्र इति ब्रुवन्।
हा हेति क्रन्दते नित्यं कीदृशं हा यमालयम्।।
मानुषत्वं महाभाग्याल्लभ्यते भुवि भारते।
तत् प्राप्य न प्रदातं मे प्राप्तव्यार्थं स्वके ग्रहे।।
पराधीनं तद्भवद्भूते ह्येवं सगद्गद्हृदः।
किंकरैः पीड्यतेत्यर्थं स्मरन् वै पूर्वदैहिकं।।

मया न दत्तं न हुतं हुताशने
तपो न तप्तं त्रिदशा न पूजिताः।
न सेवितं स्वर्गनदीजलं तदा
शरीरयोनिस्तरयेत्त्वया कथम्।।

न नित्यदानं न गवाह्निकं कृतम्
न वेददानं न च शास्त्रपुस्तकम्।

पुराणवेत्ता नहि सेवितो हरिः
शरीरयोनिस्तरयेत्त्वया कथं।

किङ्करा ऊचुः।

क्व धनं क्व सुता जाया क्व सुहृत् क्व त्वमीदृशः।
स्वकर्मोपार्जितं भुङ्क्ष्व मूढजातिश्चिरं पथि।।

जानासि संबलमसंबलमध्वगानाम्
नो संबलाय यतसे परलोकपान्थम्।
गन्तव्यमस्ति तव निश्चितमेव तेन
मार्गेण येन न भवे क्रयविक्रयोऽपि।।

त्वदर्थे मया किमपि न दत्तं कथं तापत्रयात् सुखी स्याम्।।४३।।

तैरेव त्यक्तः पतितोऽस्मि मोहे
हे राम हे माधव हे मुरारे।।
नान्यं हि पश्यामि विना भवन्तं
श्रीरामचन्द्रं शरणं प्रपद्ये।।४४।।

भावार्थ- मृत्युकाल में बन्धु-बान्धवों द्वारा त्यागा गया मैं मोह रूपी दुख में गिरा हुआ हूँ। हे राम! हे माधव! हे मुरारे! आपके बिना अन्य कोई रक्षक नहीं दिखाई देता। श्री रामचन्द्र! आपकी शरण में हूँ।

व्याख्या- तैरेवत्यक्त इति।। हे राम बान्धवैर्मरणसमये श्मशाने परित्यक्तः मोहे दुःखे पतितोऽस्मि। हे राम पूर्णानन्द हे माधव लक्ष्मीपते सुखदायक हे मुरारे अरिमर्द्दनपापनाशन! त्वां विना अन्यं त्रातारं न पश्यामि ये महापातकिनोऽजामिलव्याधगणिकादयस्तव नामोच्चारणात् संसारसागरान्मुक्ताः, किं पुनः ते ये तव शरणं सर्वात्मना प्राप्ताः ते कथं न मुक्ताः भवन्ति। तस्माच्छ्रीराम ते शरणं प्रपद्ये प्राप्तोऽस्मि।

तथाहि योगवासिष्ठे–

राम त्वत्तोऽधिकं नाम यदुक्त्वैव नरस्तरेत्।
विनापि सेतुनिर्माणमपारं भवसागरम्।।

तथाहि भागवते–

स्तेनः सुरापो मित्रघ्नु ब्रह्महा गुरुतल्पगः।
स्त्रीराजपितृगोहन्ता ये च पातकिनो परे।।

सर्वेषामप्यनद्यवतामिदमेव सुनिःकृतम्।
नामव्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषया मतिः।।

म्रियमाणो हरेर्न्नाम गृणन् पुत्रोपचारतः।
अजामिलोऽप्यगाद्धाम किं पुनः श्रद्धया गृणन्।।

अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत्।
संकीर्त्तितमद्यं पुंसां दहेदेधो यथानलः।।

पतितः खलितो भग्नः सन्दष्टस्तप्त आहितः।
हरिरित्यवशेनाह(?) पुमान्नार्हति यातनाम्।।

यस्मिन् जनः प्राणवियोगकाले
क्षणं समावेश्य मनो विशुद्धम्।
निर्हृत्य कर्माशयमाशु याति
परां गतिं ब्रह्ममयोर्कवर्णः।

तथाहि गीतायाम् –

अन्तकाले च मामेव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः।।

जन्मलाभः परः पुंसामन्ते नारायणस्मृतिः।
सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम्।।
बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति।।

प्राणप्रयाणसमये रामनाममुखाद्गलितं भाग्येनैव।।४४।।

ज्ञानं समुत्पन्नमिदं प्रयाणे
प्राणस्य दग्धं तु शुभाशुभं यत्।।
आलोक्य शुद्धं परमं परात्मा
प्रोवाच जीवं गतमोहबन्धम्।।४५।।

भावार्थ- प्राणों के प्रयाण के समय यह (उपरोक्त) ज्ञान उत्पन्न हुआ (राम नाम मुख से निकला) इस राम नाम के उच्चारण मात्र से शुभ-अशुभ कर्म (पाप-पुण्य) भस्मासात् हो गए। तब परमात्मा मोहबन्धन से मुक्त जीव को शुद्ध (मायारहित) देखकर बोले।

व्याख्या- ज्ञानं समुत्पन्नमिति। प्राणस्य जीवस्य प्रयाणसमये मरणसमये ज्ञानमिदं चोत्पन्नं रामनामेति मुखान्निःसृतं। तथाहि योगवासिष्ठे-

श्रीरामनामाखिलमन्त्रबीजं
संजीवनी चेन्मनसि प्रविष्टा।
हालाहलं वा प्रलयानलं वा
मृत्योर्मुखं वा विशतां कुतो भीः।।

रामनामेदं परं ज्ञानं मोक्षदम्। श्रीरामरामेति एतत्तारकमुच्यते। तारयतीति तारकः। महादेवोऽपि काश्यां मरणसमये जन्तूनां कर्णे इमं मन्त्रं जपति राम रामेति जीवस्य ज्ञाने प्रभूते सति शुभाशुभं पुण्यं पापं यत्स्थितं तत्सर्वं भस्मसात्। तथाहि गीतायाम् -

ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन।।

सत्यम्, शास्त्रविरुद्धमेतत् तत्वज्ञानाग्निःश्रेयससाधनम्। रामनाममात्रेण कथं मोक्षः ? सत्यं न मृषा। भक्तिं विना तत्त्वज्ञानं नोत्पद्यते। नामोच्चारणं विना भक्तिर्न्न भवति। तत्त्वज्ञानान्नामग्रहणमधिकं

शास्त्रे रामनाम अयं मन्त्रो गीयते तस्माद्रामनामग्रहणमात्रेण सर्वं शुभाऽशुभं कर्म भस्मीभूतं तपोदानादि सर्वं धर्माधिक्यमवगम्यते। श्रीरामनामाभासमात्रेणैव सर्वाघनिष्कृतं स्यात् इति महन्त्यपि च पापानि सकृदुच्चरितेनैव नाम्ना नश्यन्ति। यथा सकृत्प्रवर्त्तिते दीपे गाढध्वान्तानि तथा हरेर्नाम्नैव सर्वपापक्षय:। तदा परमात्मा जीवं शुद्धं मायारहितं विलोक्य प्रोवाच प्रकर्षेण सादरं यथा स्यात्तथा। कथंभूतं जीवम् ? गतमोहबन्धम्। मोहोऽज्ञानं तद्रहितम् ।।४५।।

भो भो सखे धन्यतर: स्मृतोऽसि
ज्योतिर्गुणातीतमसङ्गतं माम्।।
सह्याप्यसह्या बहु संसृतिश्च
ज्ञातं न तत्त्वं भवता भवघ्नम्।।४६।।

भावार्थ - हे मित्र! तुम धन्य हो जो ज्योतिस्वरूप, गुणरहित, मायारहित मुझे (परमात्मा को) स्मरण किया। अभी तक (तुमने) तत्त्वज्ञान को न जानते हुए इस संसृटि-चक्र में असह्य कष्ट (जन्ममृत्यु) को सहन किया।

व्याख्या- भो भो सख इति। भो भो सखे अत्यादरे वीप्सा धन्यतरो भवानतिशयेन धन्य:। यतो मामात्मानं स्मृतोऽसि। द्वौ सुपर्णौ सहजौ सखायौ इति श्रुते:। कथंभूतं माम्। ज्योति: तेजोमयं प्रकाशकत्वात्। न तत्र सूर्य: प्रतिभाति नाग्निर्न च निशापतिरिरिति श्रुते:। पुन: कथंभूत माम्? गुणातीतम्। सत्त्वादिभिर्व्यतिरिक्तिम्। पुन: कथंभूतं मा ? असङ्गतम्। मायारहितम्। भो सखे! एतावत्कालपर्यन्तं चतुर्विंशात्मकं तत्त्वं भवता न ज्ञातं तस्मादेतावत्कालपर्यन्तमसह्यापि संसृति: प्रसूतिनिधनवेदनावोढा। इदानीं मरणसमये तत्त्वज्ञानं रामनामश्रद्धया चोक्तम् अतो धन्यतरो भवान्। तत्त्वान्याह

मनोबुद्धिरहंकारः खानिलाग्निजलानि भूः।
श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वाघ्राणं चैव तु पञ्चमम्।।

पायूपस्थ करौ पादौ वाक्चैव दशमः स्मृतः।
शब्दस्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धस्तथैव च।

त्रयोविंशतिरेतानि। प्राकृतानि तु

चतुर्विंशतिमव्यक्तं प्रधानं गुणलक्षणम्।

यद्वा

महाभूतानि पञ्चैव भूरापोग्निमरुन्नभः।
तन्मात्राणि च तावन्ति गंधादीनि मतानि मे।।

इन्द्रियाणि दशश्रोत्रं त्वग्दृग्रनसननासिकाः।
वाक्करौ चरणौ मेढ्रं पायर्दशममुच्यते।

मनोबुद्धिरहंकारश्चित्तमित्युत्तरात्मकम् ।

यः कालः स पञ्चविंशकः। उक्तं च–

वयसि गते कः कामविकारः क्षीणे वित्ते कः परिवारः।।
शुष्के नीरे कः कासारस्तत्वे ज्ञाते कः संसारः ।।४६।।

लयं गतस्त्वं मयि निर्गुणे परे
ब्रह्मण्यनन्त्ते जगतामधीश्वरे ।
न यत्र कालो न च पाञ्चभौतिकम्।
तस्मात्स्वधाम्नि समुपागतः सखे।।४७।।

भावार्थ– हे मित्र! तुम गुणरहित (निर्गुण) आदिकारण (पर) व्यापक, अनन्त मुझको (ब्रह्म) प्राप्त हो गए हो। जहाँ काल (मृत्यु) नहीं है, न पञ्चभौतिक शरीर है, ऐसे अपने स्वधाम (परमधाम) में मेरे द्वारा लाए गए हो।

व्याख्या- लयं गत इति। हे सखे! मयि ब्रह्मणि त्वं लयं गतः। लयो मोक्षः सायुज्यं प्राप्तः। कथंभूते मयि ? निर्गुणे सत्त्वादिगुणरहिते। पुनः कथंभूते मयि ? परे। प्रकृतेर्भिन्ने। आदिकारणे। पुनः कथंभूते मयि? ब्रह्मणि व्यापके। पुनः कथंभूते मयि ? अनन्ते कालदेशतोऽपरिमिते। पुनः कथंभूते मयि? जगतामधीश्वरे। त्रैलोक्यनियन्तरि। यत्र मयि ब्रह्मणि। कालो मृत्युर्न। यत्र मयि पाञ्चभौतिकं शरीरं न। तस्मात् सखे स्वस्थाने समुपागतः। केवलानुभवानन्दस्वरूप एव भवान् स्वसमीहितं सम्पादितं यतस्त्वमात्मानं स्मृतोऽसि।।४७।।

गोपालेन विपश्चिता कृतमिमं वैराग्यहेतोः परं
श्रोतव्यं प्रतिवासरं सुकृतिभिः संसारबंधच्छिदे।
धन्यास्ते गृहमेधिनः प्रतिदिनं येषां हि भक्तिर्हरौ
मुक्तास्ते भवबंधनाद्विषयिणः संतापवारांनिधेः।।४८।।

भावार्थ- गोपाल नामक विद्वान् (कृष्ण भक्त) द्वारा रचित यह काव्य वैराग्य हेतु, मोक्ष देने वाला तथा पुण्यकर्त्ताओं के द्वारा संसार रूप बंधन से मुक्ति के लिए प्रतिदिन सुनने योग्य है। वे विषयासक्त (भी) गृहस्थ धन्य हैं, जिनकी प्रतिदिन हरि में भक्ति है। वे भी (नाम ग्रहणमात्र से) संसार रूपी शोक समुद्र से (भव बन्धन से) मुक्त हैं।

व्याख्या- गोपालेन त्रिगुणान्वितेन विदुषा श्रीकृष्णभक्तेन वैराग्यहेतोः परं मोक्षदं कृतं वैराग्यकारणमज्ञाननिवर्त्तनम्। तस्मात् सुकृतिभिः पुण्यकृद्भिः प्रतिवासरं दिनं दिनं श्रोतव्यम्। कस्मै? संसारबन्धच्छिदे। मायापाशकृन्तनाय। ते गृहमेधिनो धन्यास्ते के ? येषां प्रतिदिनं हरौ भक्तिस्ते संसारान्मुक्ताः। कथंभूतात्संसारात् ? सन्तापवारां निधेः। शोकसमुद्रात्। कथंभूता गृहमेधिनः? विषयिणः। स्रक्चन्दनवनिताभिलाषिणः। ननु विषयविक्षिप्तस्य कुतोऽव्यभिचारणी

भक्तिः संभवति। मनोनियमनेन भजनादभयं स्यात्। श्रीकृष्णस्य कर्माणि गायन् शृण्वन् भक्तिः स्यात्। हरिं भजतः पुंसो भक्तिर्भवति। ये विषयिणस्तेषां कथं मोक्षः शास्त्रविरुद्धमेतत्। तत्त्वज्ञानाग्निः श्रेयससाधनम्। विषयिणां कथं तत्त्वज्ञानं जायते। ननु महतः पुण्यस्य महदेव प्रायश्चित्तमुक्तं नत्वलं नामग्रहणमात्रम्। पापतारतम्येन कृच्छ्रादितारतम्यवत्। गुरूणां पापानां गुरूणि प्रायश्चित्तानि, लघूनां पापानां लघूनि प्रायश्चित्तानि तारतम्यं ज्ञात्वा मन्वादिभिरुक्तानि। अतस्तत्र व्यवस्थाहरिनाम्नस्तु नेयं व्यवस्था। उच्यते सर्वपातकैरिति वचनात् कर्मनिबन्धस्य पापमूलस्य कृन्तनं छेदकमतः परं नास्ति।

अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्त्तिते सर्वपातकैः।
पुमान् विमुच्यते सद्यः सिंहत्रस्तैर्मृगैरिव।।

मन्वादिभिर्न्न ज्ञातं नाममाहात्म्यम्। महत्येव कर्मणि श्रद्धयायुज्यमानो नाल्पे प्रवर्त्तते। यथाऽमृतसंजीवनौषधिमजानन्तो वैद्यो रोगनिर्हणाय त्रिकटुनिम्वादीन् स्मरति। किन्तु स्वाधीनः सिंहो यथा शृगालाय न युज्यते। भक्तिं विना तत्त्वज्ञानं नोत्पद्यते। तस्माद्भक्त्या मोक्षः। यैर्गृहमेधिभिः कर्म कृष्णार्पणं कृतं तेषां विषयिनामपि मोक्षः। प्रह्लादाम्बरीष-ध्रुवविभीषणाक्रूररुक्माङ्गदोद्धवविदुरप्रभृतयस्तेऽपि गृहमेधिनो भजनाद्विमुक्ताः। तत्त्वज्ञानद्भक्तिर्गरीयसी। तत्त्वज्ञाने बद्धायासः। कस्यापि मोक्षो न घटेत। योगिनोऽपि तत्त्वज्ञाने प्रयासं त्यक्त्वा भक्तिमार्गे प्रवृत्तास्तेषां क्लेश एव जातो न फलम्। यथा सूक्ष्मधान्यान् परित्यज्य स्थूलतुषान् घ्नन्ति तेषां किमपि फलं न भवति।

एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसां धर्मः परः स्मृतः।
भक्तियोगो भगवति तन्नामग्रहणादिभिः।।

तस्माच्छ्रीकृष्णभजनेनैव मोक्षः। अहर्न्निशं चित्तं भगवति वासुदेवे येषां मोक्षे संदेहो न। चैद्योऽपि द्वेषेण श्रीकृष्णं चिन्तयन् सायुज्यं प्राप्तः। जारबुद्ध्या गोप्यः श्रीकृष्णमभजंस्तासां मोक्षोऽभूत्। येषां श्रीकृष्णे निश्चला भक्तिस्ते योगिनोऽपि गरिष्ठाः। तत्त्वज्ञाने महान् प्रयासो विघ्नानां बाहुल्यम्। भगवद्भक्तो विघ्नान्न गणयन्ति तथा कृष्णे प्रीतिः कृता श्रीकृष्णेन रक्षिता विघ्नानां मूद्र्धसु पदं दत्वा सुखेन विचरन्ति तस्मात्सर्वं विहाय भगवद्भजनमेव कर्त्तव्यमिति भावः।

भगवद्भजने कः प्रयासः। अयं सध्रीचीनः पन्थाः। *श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मृर्त्तव्यश्चेच्छताऽभयम्।* अत्र कः प्रयासः। मुक्ता अपि लीलया विग्रहं कृत्वा भजन्त इति। एके मोक्षं नेच्छन्ति प्रभोर्दास्यमिच्छन्ति।। तथाहि भागवते–

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवया जनाः।।

उक्तं च–

त्वत्कथामृतपाथो द्यौ विहरन्तो महामुदः।
कुर्वन्ति कृतिनः केचिच्चतुर्वर्गतृणोपमं।
नन्दनन्दनकैशोरलीलाऽमृतमहोदधौ ।
निमग्नानां किमस्माकं निर्वाणलवणाम्भसा।।

तपन्तु तापैः प्रपतन्तु पर्वता
दहन्तु तीर्थानि पठन्तु चागमान्।
यजन्तु यागैर्विवदन्तु योगैः
हरिं विना नैव सृतिं तरन्ति।।

तस्मादिह संसारे हरिभजनमेवोचितमिति भावः।।४८।।

हे मर्त्त्याः शृणुत प्रसूतिनिधनव्याधेः परं चौषधम्
गोविंदस्य कथामृतं मुनिगणैर्गीतं नृणां पावनम्।
तस्मान्मे वचनं विमृष्य सुधियः पेपीयतामादरात्
पीत्वा कृष्णपदारविन्दयुगले चेतः समारोप्यताम्।।४९।।

भावार्थ- हे मनुष्यों प्रसूति, मृत्यु और व्याधि की श्रेष्ठ औषधि रूप मुनिगणों द्वारा कही गई गोविन्द का कथारूपी अमृत मानव के लिए महापाप नाशक परम् औषधी स्वरूप है, इसलिए हे सुबुद्धि पण्डित! मेरे वचनों पर विचार करके आदर सहित कर्णपुटों से कथामृत का पान करके श्री कृष्ण भगवान् के चरणयुगलों में मन को समारोपित करें।।

व्याख्या- हे मर्त्त्या इति। हे मनुजाः गोविंदस्य कथामृतं शृणुत। कथंभूतं कथाऽमृतम् ? प्रसूतिनिधनव्याधेः परं चौषधं सर्वोत्कृष्टं समूलव्याधेर्नाशम्। अन्यं हृदि विषयवासनाया उत्पाटनम्। पुनः कथंभूतम्? मुनिगणैर्गीतम् ? व्यासादिभिः कथितम्। पुनः कथंभूतम्? नृणां पावनम्?। नराणां महापातकनाशकम्। तस्मात् हे सुधियः पण्डिताः मम वचनं विमृष्य स्वहृदये विचार्य आदरादानन्देन कर्णपुटैः पेपीयतां कथामृतं पीत्वा कृष्णपदारविंदयुगले मनः समारोप्यतामियं मामकी विज्ञप्तिः।।४९।।

यथामति मयाकारि भक्तिः कृष्णे जगद्गुरौ।।
तद्भूषयन्तु कवयः साराऽसारविवेचकाः।।५०।।

भावार्थ- मेरे द्वारा यथा मति (इसकी रचना) काव्य रचना की गई है, कविगण उसे सादर ग्रहण करें क्यों कि आप ही सार और असार तत्त्व के विवेचक हैं (ज्ञानी हैं)। जगतगुरु श्री कृष्ण की भक्ति करें।

व्याख्या- यथा मति मयाकारि। हे हरे तव गुणकर्माणि को वर्णयेत्। सहस्रास्यो महामतिर्गणेश:सरस्वती एतेऽप्यनेककालपर्यन्तं गायन्ति, तथापि पारं न यान्ति। यथा पतत्रिणो यस्य यादृशी शक्तिस्तावतैव गच्छत्याकाशं तथा विदुषामपि बुद्धिः। हे कवयः पंडितास्तद्भूषयन्तु सादरेण गृह्णन्तु यतो यूयं सारासारविवेचकाः विवेकिनः किं सारं किमसारं हृदि विचिन्त्यताम्। हरेराराधनं सारमन्यदसारमिति ज्ञात्वा श्रीकृष्णे दृढां भक्तिं कुरुथ। ते एव पंडिताः ये भक्ता अपरे पाठकाः अन्यत्किं विज्ञापयामि।।४९।।

भक्त्याऽखण्डितया नूनं कृतं गोविन्दकीर्तनम्।
तत्शोधयन्तु सुधियः श्रीगोपालविवेचकम्।।५१।।

शुद्धं वेदाब्धिसंभूतं भक्तिमौक्तिकमुत्तमम्।।
कण्ठे कुर्वन्तु विद्वासः श्रद्दधाना दिवानिशम्।।५२।।

क्वाहं मन्दमतिःसन्तः क्व कृष्णगुणवारिधिः।
सहस्रास्यो हि मेधावी यस्यान्तं नैव गच्छति।।५३।।

यश्चेमां शृणुयाद्भक्त्या कथां कृष्णस्य धीमतः।।
स मुक्तः पातकैः सर्वैः प्रयाति भवनं हरेः।।५४।।

भावार्थ-हे निर्मल बुद्धि विद्वानों ! निश्चय ही दृढ़ भक्ति से गोविन्द कीर्तन (गोपाल विवेक रचना रूप) किया गया है। इस श्रीगोपालविवेचक ग्रन्थ का सुधीधन शोधन करें।।५१।।

हे विद्वानों श्रद्धा युक्त होकर दिन रात वेदरूप समुद्र से निकले हुए इस पाशनाशक (शुद्ध, मोक्षप्रद) भक्तिरूप एवं प्रसिद्ध मोती को कण्ठ में धारण करें।।५२।।

हे सन्तों! कहाँ मैं मन्दमति और कहाँ भगवान् कृष्ण का गुण रूप समुद्र? जिसके गुण समुद्र का शेषनाग भी वर्णन करने में समर्थ नहीं हैं (उसका वर्णन मुझ अल्पमति द्वारा कैसे सम्भव है) ।।५३।।

जो भी निर्मल बुद्धि से भगवान कृष्ण की इस कथा का (गोपाल विवेक का) भक्तिपूर्वक श्रवण करता है। वह सभी पापों से मुक्त होकर भगवान के परमधाम को जाता है।।५४।।

।। श्रीकृष्णाय नमः।।

भक्त्याऽखण्डितयेति। हे सुधियः निर्मलबुद्धयः मात्सर्यादिदोषरहिताः अखण्डितया दृढया भक्त्या गोविन्दकीर्त्तनं कृतं बुद्धिलाघवत्वात् गोपालविवेकाख्यं ग्रन्थं शोधयन्तु।।५१।।

शुद्धमिति। हे विद्वांसः श्रद्धानाः सन्तः अहर्निशं भक्तिमौक्तिकं कण्ठे कुर्वन्तु।। कथंभूतं भक्तिमौक्तिकम्? शुद्धं पापनाशम्। मोक्षदमित्यर्थः।। पुनः कथंभूतं भक्तिमौक्तिकम् ? वेदाब्धिसंभूतम्। वेदसमुद्राद‍ुद्भूतं। प्रसिद्धमौक्तिकं लवणसमुद्रादुत्पन्नं। अन्योऽपि कश्चिन्महारत्नं प्रसिद्धं मौक्तिकं कण्ठे धारयति तस्य दारिद्रदुःखयोर्भयं न। भक्तिमौक्तिकं ये कण्ठे धारयन्ति तेषां जननमरणयोर्दुःखं न स्यात्।। तस्माद्भक्तिमौक्तिकं विद्वांसः कण्ठे कुर्वंत।५२।।

क्वाहं मन्दमतिरिति। हे सन्तः क्वाहं मन्दमतिः।। क्व कृष्णगुणवारिधिः।। यस्य गुणवारिधेः गुणसमुद्रस्य पारं सहस्रवदनः शेषोऽपि मेधावी न गच्छति तत्र कोऽहं वराकोऽल्पमतिः।।५३।।

यश्चे मामिति। यो भक्तोऽभक्तो वा इमां कृष्णस्य कथां शृणुयात्।। कथंभूतस्य कृष्णस्य? धीमतः विमलबुधेः। सर्वज्ञस्य वा।। स पातकोपपातका महापातकैर्मुक्तः हरेर्भवनं बैकुण्ठाख्यं च याति।।५४।।

यावद्गङ्गाप्रवाहो भुवि कलुषहरंश्चन्द्रसूर्यौ दिविस्थौ
यावद्भूः पर्वताद्याः कनकगिरिरपि स्थानमौत्तानपादेः।
यावद्वेदा हि साङ्गा अखिलजलधयः स्थानसंस्थाश्च सर्वे
तावत्कालं पृथिव्यां कृतिरियममला गोपालस्य प्रभूयात्।।

इति श्रीगोपालविवेकः समाप्तः।।

शुभं भवतु।।

श्रावणशुद्धपूर्णिमायां लिखितं पं०श्रीपाठकमंगलप्रसादेन।।

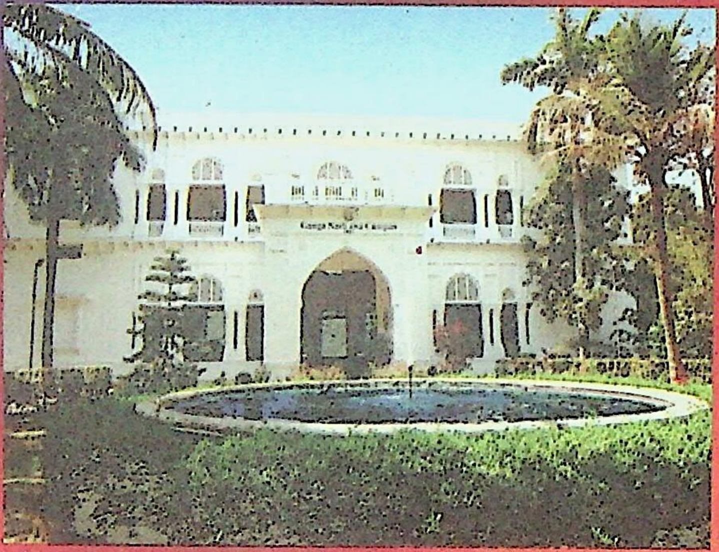
संवत् १८८०।।

श्रीरामाय नमः श्रीकृष्णायनमः श्री हरये नमः।।

●●

श्लोकानुक्रमणी

●●



राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्
(मानितविश्वविद्यालयः)
गङ्गानाथझापरिसरः
चन्द्रशेखर-आजादोद्यानम्,
प्रयागः - 211002



राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्

(मानितविश्वविद्यालयः)

गङ्गानाथझापरिसरः

चन्द्रशेखर–आजादोद्यानम्,

प्रयागः - 211002

Design : Brahmanand